फुटपाथ पर कामसूत्र

नई सेक्सी दिल्ली

अभय कुमार दुबे

हम शुरू से ही साफ़ कर देना चाहते हैं कि हम कोई 'पारिवारिक पत्रिका' नही निकाल रहे हैं। अगर आप किसी की बेटी, पत्नी या सास हैं और अगर ग़लती से आपने हमारी पत्रिका ख़रीद ली है, तो बेहतर होगा कि मेहरबानी करके आप उसे अपने मर्द को पढ़ने के लिए दे दें...

पचास साल पहले *प्लेबॉय* के पहले अंक में प्रकाशित ह्यू हेफ़नर की टिप्पणी,
जिसे *पायनियर*, दिल्ली के परिशिष्ट *वीवासिटी* ने जुलाई 2003 में छापा

अगर मुझे एक पॉर्न मैगज़ीन मिले तो उसे पढ़ने में मुझे कोई हिचक नही होगी। मैं इस बारे में खुल कर स्वीकारती हूँ, जबकि दूसरे लोग यही काम बंद कमरों में करते हैं।

सुपर हिट म्यूज़िक वीडियो *डीजे डॉल* की नायिका शेफाली ज़रीवाला,
डेल्ही टाइम्स, 3 मई 2003.

हालाँकि लोगों की राय के लिए हमारे दरवाज़े हमेशा खुले रहते हैं और दरअसल हम पाठकों की तरफ़ से की जाने वाली आलोचनाओं को प्रोत्साहित भी करते हैं, लेकिन यह स्पष्ट करना ज़रूरी है कि 'मोर सेक्स प्लीज़, वी आर इंडियन' जैसा आइटम छाप कर हम आज की पीढ़ी को उसके माता-पिताओं के मूल्यों की शिक्षा देना नही चाहते थे। हमारी कोशिश तो केवल तथ्यों को सामने लाने की थी। उन तथ्यों के ज़रिये हम माता-पिताओं को बताना चाहते थे कि आज की पीढ़ी क्या सोचती है और क्या महसूस करती है।

सम्पादक, *डेल्ही टाइम्स/इंडियाटाइम्स.कॉम*
(*डेल्ही टाइम्स* के 29 मई 2003 के अंक में कामसूत्र सेक्स सर्वे
पर पाठकों की प्रतिक्रिया के जवाब में प्रकाशित)

क्या आप डॉ. मोजो को जानते हैं, या आपकी कभी लवगुरू से मुलाक़ात हुई है? एक का पता है दिल्ली की ज़मीन, तो दूसरे का पता है दिल्ली का आसमान। एक दिन में, अगर चाहें तो सुबह-सुबह ही मिल सकता है, तो दूसरा रात में उस समय मिलता है जब घड़ी के दोनों हाथ एक-दूसरे के गले मिलने वाले होते हैं।[1] डॉ. मोजो अलग-अलग नामों से महानगर के अख़बारों और पत्रिकाओं के पन्नों पर सप्ताह में कई बार दिखायी पड़ते हैं, और लवगुरू कभी औरत तो कभी मर्द की आवाज़ में एफ़एम रेडियो के चैनलों पर छाये रहते हैं। काम दोनों का एक ही है। वही, जो सदियों पहले भारतीय इतिहास के प्राचीन काल में आचार्य वात्स्यायन का हुआ करता था। वात्स्यायन ने यौन क्रिया का एक मैनुअल तैयार किया था जिसे हम *कामसूत्र* के नाम से जानते हैं। वात्स्यायन की नायिकायें और उनके द्वारा दिया जा सकने वाला यौन प्रशिक्षण संभवतः उस युग के अभिजनों को ही सुलभ था, जबकि उनके उत्तर-आधुनिक प्रतिनिधियों, डॉ. मोजो और लवगुरू, ने वही यौन प्रशिक्षण आम लोगों को उपलब्ध कराना शुरू कर दिया है। मुख-मैथुन से जुड़ी उलझनों, सम्भोग की विभिन्न तकनीकों और कौटुम्बिक-कामाचार (इंसेस्ट) की समस्याओं का वैज्ञानिक शब्दावली में निराकरण करने वाले ये विशेषज्ञ सलाहकार वैसे तो अनाम और अनाकार हैं, लेकिन कभी-कभी इनके वास्तविक नाम भी होते हैं। इन्हें कभी डॉ. प्रकाश कोठारी कहा जाता है, जो बताते हैं कि माहवारी के समय सम्भोग करना कितना सुखद और सुरक्षित हो सकता है; और कभी इनका नाम डॉ. संजय चुग हो सकता है जो सतम्भन शक्ति बढ़ाने के लिए शिश्न-व्यायाम की तकनीकों का सिलसिलेवार वर्णन करते हैं।

वात्स्यायन का दुर्भाग्य यह था कि उन्होंने अपने पूर्वगामी यौन-विशेषज्ञों की पुरुष-केंद्रीयता का उल्लंघन करते हुए *कामसूत्र* में स्त्री-यौनिकता का सिद्धांत प्रतिपादित करने का दुस्साहस कर डाला था। इसलिए उन्हें ताज़िंदगी पुरुष-यौनिकता को प्रमुख मानने वाले उन सिद्धांतकारों का कोपभाजन बनना पड़ा जो स्त्री में कामेच्छा का केंद्र देखने के लिए तैयार नहीं थे। वात्स्यायन के युग से ही ज्ञान-राजनीति ने यह सुनिश्चित करने की पूरी चेष्टा की है कि स्त्री यौनिकता को मान्यता देने वाला उनका ग्रंथ पुस्तकालय की अलमारियों में ही पड़ा धूल खाता रहे।[2] डॉ. मोजो और लवगुरू सौभाग्य से ऐसे ज़माने में पैदा हुए हैं जब स्त्री की कामेच्छा अपनी दावेदारियों से विक्टोरियायी यौन शुद्धतावाद के अंतिम गढ़ों को भी हिलाये दे रही है। वात्स्यायन के प्रतिनिधियों द्वारा तक़रीबन रोज़ जारी किये जा रहे सेक्स मैनुअलों के बीच कहीं दिल्ली के कनॉट प्लेस के पीछे एक दिलचस्प क़िस्म की छत पर विभिन्न आयुवर्गों की महिलाएँ स्त्री की यौन-क्षुधा के मुद्दे पर जम कर कई घंटों तक विचार-विमर्श करती हैं। उनके मन में शंकाएँ रहती हैं, किसी साम्यवादी समाज के धुले-पुँछे आदर्श की परिकल्पना बार-बार उन्हें अपनी देह से बाहर ले जाती है, लेकिन ज़माने की माँग उन्हें बार-बार देह के केंद्र में आने के लिए विवश करती है। भले ही फ़िलहाल वे डॉ. मोजो की पाठिका और लवगुरू की श्रोता न हों, लेकिन उनकी बहस को सुन कर साफ़ लगता है कि ज़माना बदल रहा है और इस बार ख़ास बात यह है यह बदलाव उनसे बाहर और अनजान नहीं, बल्कि उनके भीतर और उनकी जानकारी में हो रहा है।[3] यही है वह समय जिसे सेक्शुऍलिटी का इतिहास लिखते हुए फूको ने पूर्व के संदर्भ में 'आर्स इरॉटिका' कहा था, और जिसे एंथनी गिडेंस ने 'ट्रांसफ़ॉर्मेशन ऑफ़ इंटिमेसी' की संज्ञा दी है। फूको और गिडेंस अपना विमर्श ज़्यादातर पश्चिमी संदर्भों तक ही सीमित रखते हैं, लेकिन उत्तर-आधुनिक भारतीय यौन चेतना में इस विमर्श की आहटें पढ़ी जा सकती हैं। वैसे भी भूमंडलीकृत होती हुई दुनिया में पूर्व की यौनिकता ही नहीं, बल्कि यौनिकता को ही समझने के लिए वात्स्यायन और फूको को मिला कर पढ़ना ज़रूरी हो गया है।[4]

ज़ाहिर है कि दिल्लीवालों की कामनाओं का भूगोल बदल रहा है। उनकी कामनाएँ कभी आर्थिक और सामाजिक प्रगति के मानकों से ही परिभाषित होती थीं, लेकिन आज उनके केंद्र में उनकी देह का सुख आ चुका है। आज ये कामनाएँ आधुनिकता और बाज़ार की फ़ैक्ट्री में रची जाती हैं। मुश्किल यह है कि हमारे पास किसी सेक्शुअल सर्वे की सेवाएँ उपलब्ध नहीं हैं, वरना उसके ज़रिये हमें दिल्ली के सेक्शुअल भूगोल का पता चल सकता था। अमेरिका के लिए इस तरह के सेक्शुअल सर्वे की भूमिका चालीस और पचास के दशक में अल्फ़्रेड किंसी और उनके साथियों ने निभाई थी। अमेरिकी पुरुषों और महिलाओं के यौन व्यवहार के बारे में प्रकाशित किसी रिपोर्ट के बाद सत्तर के दशक में हाइट रिपोर्ट ने स्त्रियों के यौन व्यवहार के बारे में विशेष जानकारी दे

कर अमेरिकी सेक्शुॲलिटी का ख़ाका काफ़ी कुछ पूरा कर दिया था। 1979 में किंसी इंस्टीटयूट ने ही एलन बेल और मार्टिन वीनबर्ग द्वारा लिखित अमेरिकी समलैंगिकता का दस साल लंबा अध्ययन प्रकाशित किया। इसने दावा किया कि समलैंगिक व्यक्ति इतरलैंगिक व्यक्ति से कई मामलों में बेहतर होता है। इसके आधार पर समलैंगिता की राजनीति को सामाजिक तर्क मिले और आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के तहत सेक्शुअल ऐटलस की संभावनाएँ बनने लगीं। पचास और साठ के दशक में केवल *प्लेबॉय* जैसी सॉफ़्टपॉर्न पत्रिकाएँ ही सेक्शुॲलिटी की दुनिया में हस्तक्षेप करती थीं, पर सत्तर के दशक में सामान्य अमेरिकी मीडिया ने सेक्शुॲलिटी के सभी आयामों के लोकप्रिय प्रतिनिधि की भूमिका निभानी शुरू की। वह सेक्शुॲलिटी संबंधी शोध में भाग लेने लगा और सर्वेक्षणों के परिणामों को मीडिया के ज़रिये आम लोगों तक पहुँचाया जाने लगा। इस तरह मीडिया सेक्शुॲलिटी की विविध व्याख्याओं का वाहक बन गया। अस्सी और नब्बे के दशक में हुए सेक्स सर्वेक्षणों को सेक्स के लिहाज़ से काफ़ी खुल चुके मीडिया के ज़रिए पाठकों को परोसा गया। मीडिया ने खुद भी सेक्स सर्वेक्षण कराने शुरू किये और शौक़िया सेक्स विशेषज्ञों की एक पूरी फ़सल पैदा कर डाली। अख़बारों और पत्रिकाओं के कॉलम यौन क्रिया की तकनीक सिखाने के मैनुअल बन गये। सेक्शुॲलिटी की सेल लग गयी जिसमें फ़र्ज़ी और वैध दोनों तरह की सेक्स रिसर्च यौन क्रांति की वैधता के लिए इस्तेमाल की जाने लगी।[5]

लेकिन, अमेरिका की तरह दिल्ली के पास किंसी जैसे किसी इंस्टीटयूट की सेवाएँ कभी नहीं रहीं। अस्सी के दशक के ख़ात्मे तक इस शहर की देह पर सर्वेक्षण आधारित समाजशास्त्र के ज़रिये मीडिया ने किसी सेक्शुअल इबारत के लिखने की शुरुआत भी नहीं की थी। आज़ादी मिलने के कम से कम चालीस साल बाद तक सेक्शुॲलिटी के नाम पर उसके पास सभी दूसरी जगहों या सभी दूसरे शहरों की तरह सेक्स ऐक्ट के कुछ केंद्र ही थे। परिवार की चौहद्दी में बना माता-पिता का बेडरूम था जिसे सेक्स ऐक्ट के एकमात्र स्थायी और वैध केंद्र के रूप में देखा जा सकता था। यौन क्रिया के कुछ अवैध केंद्र भी थे जिनमें परिवार की ही तरह तक़रीबन अनंत काल से चली आ रही उतनी ही स्थायी क़िस्म की संस्था चकला घर प्रमुख थी। दिल्ली के संदर्भ में इसे हम जी.बी. रोड के नाम से जानते हैं। इधर-उधर बिखरा हुआ कॉलगर्ल्स का एक धंधा था जिसने अकसर गिरफ़्तार हो जाने वाले कमलजीत नाम के एक दलाल की शख़्सियत को एक तरह की कुत्सित आभा से भर दिया था। इसके अलावा सात परतों के नीचे दफ़्न कौटुम्बिक कामाचार (इंसेस्ट) था। विवाहेतर संबंधों की अवैध दास्तानें थीं जिनका जिक्र वैध तरीके से करने पर पाबंदी थी। हस्तमैथुन की शाश्वत क्रिया थी जिसके कारण धरती पर गिर रहे वीर्य के एक-एक क़तरे से मर्दाना ताक़त के क्षय की चीत्कार निकलती रहती थी। ख़ानदानी शफ़ाखाने के हकीम साहब थे जिनकी रामबाण दवाओं के विज्ञापनों से दिल्ली के पेशाबघरों की दीवारें सजी रहती थीं। मध्यवर्गीय भद्र समाज में थोड़े से दाग़ी क़िस्म के समलैंगिक भी थे जिनके 'ऐक्टिव' या 'पैसिव' होने की खुसफुसाहट सामाजिक गॉसिप का स्थायी अंग थी। कुल मिलाकर यह एक ऐसी सेक्शुॲलिटी थी जो पूरे देश में कहीं भी पायी जा सकती थी, ख़ासकर किसी भी शहरी समाज में इसके अंश मिल सकते थे। इस सेक्शुॲलिटी पर आधुनिक शहरी जीवन के आदिम रूपों की छाया थी। इसे उन वक़्तों की छाप कहा जा सकता था जब पूँजीवाद की संस्कृति भारतीय शहरों में उत्पादन के दावों के साथ नमूदार हुई थी और भारतीय पूँजीवाद मितव्ययिता के पब्लिक सेक्टरी दौर से गुज़र रहा था। राष्ट्रीय बचत का मुहावरा अर्थव्यवस्था के केन्द्र में था, और यौन जीवन के केन्द्र में वीर्य को बचा कर रखने का आग्रह छाया हुआ था। शहरी मध्यवर्ग को तरह-तरह की विचारधाराओं से दुनियावी मोक्ष की उम्मीद थी। यौन ऊर्जा का प्रचलित मतलब मर्दानगी ही होता था। जिसे यूजेनिक्स जैसे सूत्रीकरणों के ज़रिये राष्ट्र-निर्माण की महापरियोजना में लगाने की तजवीज़ें उस समय तक पुरानी नहीं पड़ी थीं।[6] कंडोम परिवार नियोजन के मुहावरे से बाहर नहीं निकल पाया था। ब्रह्मचर्य और देशभक्ति के निजी रिश्तों की प्रामाणिकता को 'नॉनवेज लतीफ़ों' ने भंग नहीं किया था। वेश्याओं ने खुद को 'सेक्स वर्कर' के रूप में पेश करना शुरू नहीं किया था।

उस ज़माने में फ़ैशन या तो फ़िल्मी ऐक्टरों की ठेकेदारी था, या फिर उसे ऊपरी तबक़े के लोगों की अदाबाज़ी का नाम दिया जाता था। प्रेमी-प्रेमिका दो अलग-अलग कम्पार्टमेंटों में रहते हुए प्रेमपत्र लिखते रहने के लिए अभिशप्त थे और तीस हज़ारी के सिविल मैरेज कोर्ट से बाहर निकलते ही रोमांस के छीजने की प्रक्रिया

शुरू हो जाती थी। क़ानूनी घोषित हो जाने के बाद भी गर्भपात की घटना रुसवाई का कारण बन सकती थी। चरम आनंद के लिए छटपटाती उन्नत उरोजों वाली काल्पनिक नायिकाओं को तृप्त करने वाले विकराल शिश्नों की भीषण स्तम्भनशक्ति के दर्शन केवल मस्तराम द्वारा रचित क्लासिक पॉर्न उपन्यासों में ही हो सकते थे। ज़ाहिर है कि इन सेक्शुॲलिटी की भूमिका समाज के लिए किसी भी तरह विधेयक नहीं थी। इसके आईने में समाज परिवर्तन की शक्ल देखना नामुमकिन था। यह सेक्शुॲलिटी इंसान की शख़्सियत को परिभाषित करने वाले उस 'सार तत्त्व' का रूप नहीं ले पायी थी जो हर व्यक्ति के लिए विलक्षण होता है। यह तो ज़्यादा से ज़्यादा आनुषंगिक भूमिका ही निभा सकती थी, क्योंकि हर हालत में इसके तहत आयोजित होने वाला सेक्स ऐक्ट विवाह की पवित्र संस्था द्वारा स्थापित प्रजनन के कतर्व्य की सीमाओं में बँधा हुआ था।

दिल्ली को उसकी विशिष्ट सेक्शुॲलिटी मिलनी तब शुरू हुई जब भारतीय पूँजीवाद का विकास एक ख़ास चरण में पहुँचा। यौन क्रांति के संदर्भ में दुनिया भर का तजुर्बा बताता है कि फ़्री मार्केट और फ़्री सेक्स काफ़ी कुछ अन्योन्याश्रित प्रत्यय हैं। सेक्स एक दैहिक हक़ीक़त है। लेकिन, सेक्शुॲलिटी देह पर केंद्रित होते हुए भी देह के दायरे में क़ैद नहीं होती। इतिहास और संस्कृति के औज़ार उसे बनाते हैं। आधुनिकीकरण एक ख़ास मुक़ाम पर पहुँच कर ऐसे हालात तैयार करता है जिनमें अभी तक ख़ामोश रही सेक्शुॲलिटी हज़ार ज़ुबानों से बोलने लगती है। इंसान अपने वैयक्तीयन (इंडिविडुएशन) के बिना आधुनिक नहीं होता और इंसान की सेक्शुॲलिटी कामनाओं के ज़रिये वैयक्तीयन को आत्मगत आधार देती है। आधुनिकीकरण, पूँजीकरण, जिंसीकरण और बाज़ार यौन क्रिया और प्रजनन को एक अनिवार्य रिश्ते में बँधा नहीं रहने देते। संतानोत्पत्ति से रिश्ता टूटते ही सेक्स देह के आनंद का प्रबल स्रोत बन कर उभरता है। यौन संबंधों की एकनिष्ठता सात जन्मों का साथ नहीं रह जाती और जीवन निजी रिश्तों की अलग-अलग कहानियों में बँटा हुआ उपन्यास हो जाता है। यौन दमन पर बहस छिड़ जाती है। वीर्य संरक्षण पर टिकी हुई मर्दानगी को हस्तमैथुन (मास्टरबेशन) चुनौती देने लगती है। देह व्यापार पर आरोपित हज़ारों साल पुरानी अनैतिकता को वेश्याओं का यह नारा पलट देता है कि उन्हें 'सेक्स वर्कर' समझा जाना चाहिए। औरत की ऐंद्रिकता का विधान ही नये सिरे से बनता है। वह समझने लगती है कि पति के सामने पेश किये जाने के अलावा भी उसकी देह के कई उपयोग हो सकते हैं। वह देखती है कि पहली बार 'सेक्स गॉडेस' के तौर पर म्यूज़िक चैनलों पर होने वाले उसकी देह के छायानुवाद में वैशाली की नगरवधू की तरह अपमान के तत्त्व नहीं हैं। आर्थिक मजबूरियों के बिना भी स्वैच्छिक चुनाव से देह व्यापार में उतरने वाली रूपजीवाओं का प्रतिशत बढ़ने लगता है। इस माहौल में स्त्री जैसे ही यौन संतुष्टि की दावेदारी करती है, पितृसत्ता की चौधराहट गड़बड़ाने लगती है। दृश्यरति (वॉयरिज़्म या पोर्नोग्राफ़ी) का ऊपर से नीचे तक और दायें से बायें तक प्रसार हो जाता है। छोटा परिवार अधिक यौनानंद की गुंजाइशों के साथ उभरता है। *कामसूत्र* जैसे कंडोम ब्रांड चरम आनंद और सुरक्षित सहवास के दावे के साथ बाज़ार में उतरते हैं। कंडोम पर इतरलैंगिक इजारेदारी ख़त्म हो जाती है और हेटरोसेक्शुॲलिटी का मुँह होमोसेक्शुॲलिटी चिढ़ाने लगती है। रूमानी प्रेम का चरम उत्कर्ष अपनी ख़ुदी को मिटा देने वाले हेटरोसेक्शुॲल उत्कट प्रेम में न हो कर अपनी-अपनी इयत्ता को बरक़रार रखने की शर्त वाले उस प्रेम में होता है जो हेटरो भी हो सकता है और होमो भी। सेक्स ऐक्ट अपनी विविधताओं के साथ गोपनीयता से बाहर निकल कर 'पब्लिक सेक्स' का रूप ले लेता है। निजी जीवन की ज़मीन पर पकने वाली कामनाओं की फ़सल इंसान को अपनी सेक्शुअल पहचान का उत्सव मनाने के लिए उकसाती है। इस पहचान के ज़रिये न जाने कितनी उत्तर-आधुनिक बग़ावतें होने लगती हैं। यह केवल सेक्शुअल वैयक्तीयन ही है जिसमें परिवार की प्राक्-आधुनिक संस्था को बुनियादी तौर पर बदलने की क्षमता होती है।

निजी पूँजी, बाज़ार, ग़ैरधार्मिक शिक्षा, संचार और परिवहन के नये साधन, आदि भी सेक्शुअल पहचान और उसके आधार पर होने वाले वैयक्तीयन पर गहरा असर डालते हैं। ये नया मुहावरा, नया प्रोत्साहन और नया स्पेस देते हैं। आधुनिकीकरण के ये सभी पहलू शहरी ज़मीन पर ही पनपते हैं, इसलिए सेक्शुॲलिटी शहरों में ही सूत्रबद्ध होती है और वहीं ख़ुद को व्यक्त करती है। वैयक्तीयन का सिलसिला शहरी जीवन की ज़मीन पर चलता है। शहर में आप बेहद खुला जीवन जीते हुए भी निजी तौर पर एक ख़ास तरह की सीक्रेसी क़ायम रख सकते हैं, यहाँ तक कि आपकी एक सीक्रेट लाइफ़ भी हो सकती है। कोई चाहे तो एक सामूहिक सीक्रेसी का

दायरा भी क़ायम कर सकता है। 'स्ट्रेट' यानी हेटरोसेक्शुअल लोग समझते हैं कि शहर उनका है, पर एक ख़ुफ़िया तौर पर अनदेखे-अनजाने 'क्वीयर' यानी होमोसेक्शुअल होगों का भी होता है। सेक्शुॲलिटी का 'कमिंग आउट' संदेश देता है कि शहर के पार्कों, बस स्टॉपों, टॉयलटों, पबों, रेस्त्राओं, मल्टीप्लेक्सों, रात के अड्डों और ऐसे ही न जाने कितने स्पेसों के तात्पर्य और इस्तेमाल एक नहीं बल्कि दो हो चुके हैं। ठीक उसी तरह जैसे कभी फ़्रॉयड ने बीसवीं सदी की शुरुआत में हमें बताया था कि इंसान की देह का हर अंग एक नहीं, दो काम करता है एक काम क़ुदरती और दूसरा सेक्शुअल। फ़्रॉयड की यह बात शहरी स्पेसों पर भी लागू होती है। सेक्शुॲलिटी के 'कमिंग आउट' में नये समुदायों के उदय की गुंजाइश रहती है। इस तरह आधुनिकीकरण के तहत शहर के भीतर पनपते नये शहर की शिनाख़्त सेक्शुॲलिटी की नयी अभिव्यक्तियों के आईने में होती है। सेक्शुॲलिटी के नये रूप नये शहर का सुराग़ देते हैं।

देह और दैहिक आनंद की केंद्रीयता के कारण प्रेम, मित्रता, भाईचारे और रक्त संबंधों की शक्ल कुछ से कुछ हो जाती है। एक ज़बर्दस्त बहस छिड़ जाती है जिसमें पूरा मास मीडिया, बुद्धिजीवी हलक़े, सरकार, राजनीतिक पार्टियाँ, धर्माचार्य, मानवाधिकारों के समर्थक, तरह-तरह के नैतिकतावादी और मूर्तिभंजक पक्ष-विपक्ष में खड़े नज़र आते हैं। साहित्य में, ख़ास कर कथा साहित्य में सेक्स ऐक्ट की राजनीति मुखर हो जाती है। सार्वजनिक जीवन में सेक्स स्कैंडलों का लम्बा सिलसिला शुरू हो जाता है। एक तरफ़ यौन क्रांति का झंडा बुलंद होता है, और दूसरी तरफ़ मुक़ाबले में सेलिबेसी (ब्रह्मचर्य) का भजन होने लगता है। सेक्शुॲलिटी पर होने वाली बहस के कारण बनने वाले समीकरणों की शक्ल अलग होती है। राजनीतिक विमर्श हैरत से देखता है कि उसे शहरी जीवन के उन तजुर्बों पर भी राय देनी है जो अब तक सार्वजनिक चर्चा के योग्य नहीं माने जाते थे। राजनीतिक लोकतंत्र, आर्थिक लोकतंत्र, सामाजिक लोकतंत्र और लैंगिक लोकतंत्र से अलग सेक्शुअल लोकतंत्र और सेक्शुअल नागरिकता के विचार से वह भौचक्का रह जाता है। हर विचारधारा के उदारतावादी और रेडिकल अकसर पूरी तरह अनुदार और प्रतिगामी साबित की जा सकने वाली पेशकश करते हुए पकड़े जाते हैं। विरोधाभास यह होता है कि सेक्शुअल लोकतंत्र के सवाल पर ब्राह्मणों और दलितों में प्रवक्ताओं की राय एक हो सकती है। जब अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर सेक्शुअल रुझान को मानवाधिकारों से गिनने की बहस होती है तो सारे आपसी झगड़े भुला कर भारत की सरकार पाकिस्तान की सरकार के पीछे चलती नज़र आती है। जेंडर लोकतंत्र वालों को घोर दक्षिणपथियों, अनुदारपंथियों और धर्माचार्यों की भाषा बोलते हुए देखा जा सकता है। वर्किंग क्लास में काम करने वाला कम्युनिस्ट पार्टी का पूर्णकालिक कार्यकर्ता और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का जीवनदानी प्रचारक बिल्कुल एक सी बात करते नज़र आ सकते हैं। शहर की सेक्शुॲलिटी जब अपनी हज़ार ज़ुबानों में बोलती है तो मार्क्सवादी, गांधीवादी, सांस्कृतिक राष्ट्रवादी और यहाँ तक कि आधुनिकतावादी तक उसके सवालों का जवाब नहीं दे पाते। सेक्शुॲलिटी के मुद्दे को सबसे पहले प्रचलित करने वाला नारीवाद भी खुद को इस माहौल का स्वाभाविक अंग नहीं समझ पाता। सेक्शुअल मुद्दे इन विचारधाराओं को ऊपर से नीचे और दायें से बायें पूरी तरह विभाजित कर देते हैं।

नब्बे के दशक की शुरुआत में नरसिंह राव और मनमोहन सिंह ऐण्ड कम्पनी ने एडम स्मिथ के 'इनविज़िबिल हैंड' को जैसे ही खुली छूट दी, 'मैडम स्मिथ के विज़िबिल हेंड' ने अपनी करामात दिखानी शुरू कर दी। मुंबई से प्रकाशित होने वाली *डिबॉनेयर* उस समय तक भारत में *प्लेबॉय* शैली की शायद एकमात्र पत्रिका थी। इस पत्रिका ने अपने पाठकों के बीच 1991 में एक सर्वे कराया जो अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे शहरी मर्दों के यौन व्यवहार की एक झलक पेश करता था। सर्वे के नतीजों को दो समाज वैज्ञानिकों — मीरा सवारा और सी.आर. श्रीधर — से विश्लेषित कराया गया। इसके बाद सेक्स सर्वेक्षणों का सिलसिला शुरू हो गया। इसके फ़ौरन बाद *सैवी* नामक महिला पत्रिका ने अंग्रेज़ी पढ़ी-लिखी शहरी स्त्रियों के यौन व्यवहार पर सर्वे किया जिसके नतीजों का विश्लेषण करने के लिए एक बार फिर इन्हीं दोनों विद्वानों की सेवाएँ ली गयीं। 1983 में एड्स का रोग प्रकाश में आया और 1986 में भारत में पहले एड्स रोगी की शिनाख़्त हुई। सारी दुनिया इस लाइलाज महारोग से आक्रांत थी। इस रोग के फैलने के कई कारणों में से दो प्रमुख कारण असुरक्षित हेटरोसेक्शुअल सम्भोग और असुरक्षित होमोसेक्शुअल सम्भोग थे। एड्स के डर ने विश्व संस्थाओं को देह व्यापार के दायरों और होमोसेक्शुअल दायरों की जाँच करने का कार्यक्रम दिया। तीसरी दुनिया के देशों में सेक्शुॲलिटी के विमर्श की शुरुआत करने और

उसके ज़रिये सेक्शुॲलिटी को ज़ुबान देने का श्रेय एक तरह से इस महारोग को भी जाता है। *डिबॉनियर* और *सैवी* के सेक्स सर्वेक्षणों के बाद तरह-तरह के सर्वेक्षणों का सिलसिला शुरू हो गया। सरकारी विभाग, ग़ैर-सरकारी संगठन और मीडिया के संस्थान पिछले चौदह साल में बार-बार तरह-तरह के सर्वेक्षण करके यह पता लगाने का प्रयास करते दिखे कि देश के शहरों की सेक्शुॲलिटी का सूचकाँक क्या है और ख़ासकर दिल्ली की सेक्शुॲलिटी का सूचकाँक क्या है। 1990 से 1995 के बीच किये गये इन सर्वेक्षणों में दिल्ली मुंबई से पीछे थी, पर सन 2000 के बाद हुए सर्वेक्षणों में वह देश के पहले नम्बर के सेक्शुअल सिटी की तरह उभरी।[7]

नज़रिये के लिहाज़ से इन सर्वेक्षणों की सीमाएँ अपने-आप में स्पष्ट हैं। उनमें से कोई केवल शारीरिक सहवास की विधियों और कोई सिर्फ़ यौन शिक्षा के नज़रिये से किया गया है, किसी पर प्रजनन संबंधी स्वास्थ्य का नज़रिया हावी है तो कोई सिर्फ़ एड्स विरोधी अभियान का ही नतीजा है। आमतौर पर ये सर्वेक्षण सेक्स संबंधी प्रश्नों को औरत और मर्द के बीच ऊँच-नीच के सत्ता संबंधों की रोशनी में सूत्रबद्ध नहीं करते। इन सर्वेक्षणों का यह प्रिय सवाल होता है कि 'पिछले महीने आपने कितनी बार यौन क्रिया की', लेकिन कुछ उल्लेखनीय अपवादों को छोड़ कर इसके साथ ये सवाल नहीं पूछे जाते कि यौन क्रिया में किसने पहल की, परिस्थितियाँ क्या थीं, क्या दोनों पार्टनरों में से किसी ने कभी यौन क्रिया का प्रस्ताव ठुकराया भी, क्या इसके बावजूद यौन क्रिया हुई, कुल मिलाकर यौन क्रिया पर सहमति बनी या नहीं, अगर सहमति बनी तो यौन क्रिया के साथ किस तरह की बाध्यताएँ जुड़ी हुई थी, क्या हिंसा या घरेलू कलह के खुले या छिपे अंदेशे भी उसके साथ जुड़े हुए थे, आदि। ज़ाहिर है कि इन सर्वेक्षणों की पद्धति और मंशा पर काफ़ी आपत्तियों की गुंजाइश है, पर इसके बावजूद उनसे विभिन्न अंतर्दृष्टियाँ मिलती हैं। इनसे इतना संदेश तो मिलता ही है कि अगर कोई पूछताछ करने और बात करने के लिए तैयार हो तो पढ़े-लिखे शहरियों में से कई अपनी सेक्शुॲलिटी को व्यक्त करना चाहेंगे। ये सर्वेक्षण बताते हैं कि शहर के वासी अंधेरे और बंद शयन कक्षों में ख़ामोशी से सम्भोग करते-करते ऊब चुके हैं। वे प्रयोग के मूड में हैं और आज़मा कर देखना चाहते हैं कि वात्स्यायन ने जिन चौंसठ कलाओं और चौरासी आसनों का जिक्र किया है, उनकी व्यावहारिक निष्पत्तियाँ क्या हैं। हालाँकि नेशनल फ़ैमिली प्लैनिंग एसोसियेशन जैसी संस्थाओं ने भी शहरी युवक-युवतियों की सेक्शुॲलिटी का सर्वे करके इस प्रक्रिया में अपना योगदान किया, पर समाचार माध्यमों ने इसमें प्रमुख भूमिका निभायी। नब्बे के दशक में ही वर्ल्ड वाइड वेब (डब्ल्यू.डब्ल्यू.डब्ल्यू.) जैसी परिघटना सामने आयी और इंटरनेट ने सेक्शुॲलिटी की दुनिया को राष्ट्रीय सरकारों के सेंसर की सीमाओं से बाहर कर दिया। इंटरनेट के कारण सर्वे करना आसान हो गया। 2003 में हुआ 'कामसूत्र क्रॉस-टैव सेक्स सर्वे' तीन डॉट कॉम पोर्टलों ने ही मिल कर किया था। त्रिआयामी संचार क्रांति (सेलुलर फ़ोन, इंटरनेट और उपग्रही चैनल) के साथ ही सेक्शुॲलिटी के हज़ार ज़ुबानों से बोलने के हालात बन गये।

इन परिस्थितियों ने दिल्ली में दैहिक कामनाओं का भूगोल मुखर कर दिया। यह दिल्ली में ही सबसे ज़्यादा क्यों हुआ, इसकी वजह दिल्ली की तवायफ़ों, उनके ग्राहकों, दिल्ली के समलैंगिकों और दिल्ली के हिजड़ों के महानगरीय (कॉस्मोपॉलिटन) चरित्र में ही नहीं है, बल्कि इस हक़ीक़त में भी है कि दिल्ली की तक़रीबन आधी आबादी फ़्लोटिंग है। इसे हम उखड़े हुए लोगों का शहर कह सकते हैं। इस मामले में दिल्ली मुंबई, कोलकाता, बंगलूर और चेन्नई जैसे महानगरों से बहुत आगे है। नब्बे के दशक की शुरुआत में दिल्ली की ऐसी आबादी क़रीब 42 फ़ीसदी थी जो केवल चौदह साल में बढ़ कर 50 फ़ीसदी हो गयी है। तेज़ी से विकसित होती हुई सार्वदेशिकता के कारण दिल्ली की आबादी को एक छोटे भारत की संज्ञा दी जा सकती है। आईटी प्रोफ़ेशन से लेकर अर्थव्यवस्था के तीसरे क्षेत्र, जिसे हम सर्विस सेक्टर कहते हैं, ने फ़ैशन और विज्ञापन उद्योग के साथ मिल कर इस उखड़ी हुई आबादी के सेक्शुअल अभिजन का निर्माण किया है। उखड़े हुए लोग सेक्शुअल एडवेंचर की संभावनाओं से लैस होते हैं, क्योंकि भूगोल-परिवर्तन उनकी कामनाओं पर उन नैतिकताओं वर्जनाओं की जकड़ ढीला कर देता है जो उन्होंने अपने जन्म स्थान पर परिवार और कुटुम्ब की छाया में हुए लालन-पालन के दौरान आत्मसात की थीं।

दिल्ली के रेडलाइट एरिया जीबी रोड के 82 चकलाघरों में धंधा करने वाली क़रीब तीन हज़ार तवायफ़ों में ज़्यादातर आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, पंजाब, गुजरात और यहाँ तक कि नेपाल की

हैं। इन तवायफ़ों में से कई दिल्ली में एक सीक्रेट लाइफ़ गुज़ारती हैं। वे साल में एक बार अपने बच्चों और परिवार के साथ रहने जाती हैं। वे लोग उनके चकलाघर वाले जीवन को नहीं जानते। इसी तरह कनॉट प्लेस के सेंट्रल पार्क में या अशोक होटल के पास नेहरू पार्क में या फिर धौला कुआँ के बस स्टैंड पर या फिर लालक़िले से कश्मीरी गेट के बीच रोज़ शाम को सेक्स पार्टनरों की तलाश करते हज़ारों समलैंगिकों और हिजड़ों के बीच किसी एक क्षेत्र की इज़ारेदारी नहीं मिलेगी। समलैंगिकता के प्रवक्ताओं का दावा है कि दिल्ली देश की 'गे राजधानी' बन चुकी है। सिर्फ़ दिल्ली में बिकने वाले अख़बारों में छपने वाले हेटरोसेक्शुअल डेटिंग कॉलमों में भी दिल्ली की एक बेहद तेज़ी से बढ़ती हुई सेक्शुअल सार्वदेशिकता का नमूना मिल सकता है। इंटरनेट पर सेक्शुॲलिटी के हिसाब से अलग-अलग चैट रूम प्रचलित हैं। उनमें घुसपैठ करने पर पता लगता है कि दिल्ली की सेक्शुॲलिटी कितनी सर्वभारतीय क़िस्म की है। सार्वदेशिकता और उखड़ी हुई आबादी के साथ-साथ बीसवीं सदी के आख़िरी दस सालों में दिल्ली को अपने आधुनिक इतिहास में पहली बार पाँच नये स्पेस मिले जिनके कारण अंतरंग रिश्तों में तब्दीली आने की गुंजाइश बनी। पहला स्पेस ऑटोमोबाइल क्रांति ने मुहैया कराया जो अस्सी के दशक के मध्य में शुरू हुई थी और नब्बे के दशक में चरम पर पहुँची। दूसरा स्पेस सेलुलर फ़ोन ने दिया। तीसरा स्पेस ऑडियो-विज़ुअल क्रांति और इंटरनेट के ज़रिये मिला। चौथा स्पेस डिस्कोथीक और पब संस्कृति के साथ-साथ नये उत्तर-आधुनिक कहवाघरों और मल्टीप्लेक्सों ने तैयार किया। और, पाँचवां स्पेस बाज़ार और उपभोक्ता क्रांति ने दिया।

कार ने मोबाइल प्राइवेसी दी और दैहिक प्रेम की सम्भावनाओं को भौतिक रूप से गतिशील बना दिया। सेलफ़ोन का स्पेस तो शुद्ध मोबाइल साबित हुआ। उसके कारण रोमांटिक लव की काफ़ी मुश्किल घटना चुटकी बजाने जितनी सरल हो गयी। इंटरनेट ने पहली बार इस समस्या का समाधान पेश किया कि वर्चुअल रियलिटी ओर रियलिटी में क्या अंतर है। फ़िलॉसफ़ी ऑफ़ लव के इलाक़े में यह बहस अनंत काल से चल रही थी। इंटरनेट ने वर्चुअल रियलिटी को रियलिटी के समकक्ष ला बैठाया। प्रेम वर्चुअल होते हुए भी वर्चुअल नहीं रह गया। जिस साइबर कैफ़े में मेल चेक करने के लिए जाया जाता है, उसी कैफ़े में इंटरनेट पर पॉर्न सर्फ़िंग होने लगी। ध्यान रहे कि इंटरनेट एक ऐसा स्पेस भी है जहाँ दृश्य पोर्नोग्राफ़ी भारतीय चरित्रों के साथ मौजूद है। जब बीसवीं सदी ख़त्म हुई थी तो भारत इंटरनेट पर पॉर्न के एक बड़े केंद्र के रूप में उभर चुका था। करीब 18000 पूरी तरह से भारतीय पॉर्न साइटें बन चुकी थीं और उनके सैम्पल नेटिज़ंस को मुफ़्त में उपलब्ध थे। इन तमाम पॉर्न साइटों के सर्वर विदेशों में हैं। प्रौद्योगिकीय विकास ने इंटरनेट पॉर्न को डाउनलोड करके सीडी और डीवीडी में उतार कर बाज़ार में बेचना बेहद आसान कर दिया। सेलफ़ोन, एसएमएस और ई-मेल ने सीक्रेट लाइफ़ को प्रेमपत्रों की दुनिया से निकाल कर कहीं ज़्यादा बड़ी रफ़्तार और बारम्बारता प्रदान की। ऑडियो-विज़ुअल क्रांति ने पोर्नोग्राफ़ी के ज़रिये सेक्स ऐक्ट को मनी शॉट, मीट शॉट और बीवर शॉट की तकनीकों से दिखाया। स्वयं सेक्स करते हुए इस कार्रवाई को इस प्रकार देखना असम्भव था। सेक्स ऐक्ट की वास्तविक और फ़र्ज़ी सम्भावनाओं का अनंत उद्घाटन हुआ। कहवाघरों और मल्टीप्लेक्सों ने शहर के अंधेरे कोनों को रोशन कर दिया। दिल्ली के मध्यवर्ग को पहली बार बाक़ायदा एक नाइट लाइफ़ मिली। पश्चिमी तर्ज़ के नाचघरों में मद्यपान करते हुए जोड़ों के सामूहिक नृत्य ने शारीरिक स्पर्श और अंतरंगता के सर्वथा नये अनुभव का सृजन किया। तरह-तरह की थीम पार्टियों का फ़ैशन धनाढ्यों के दायरे से निकल कर जल्दी ही मध्यवर्ग में प्रचलित हो गया। पश्चिम में मची यौन उथल-पुथल में उपभोक्ता क्रांति की महत्वपूर्ण भूमिका मानी जाती है। दिल्ली में इस समय उपभोक्ता क्रांति भी चरम पर है। धन की 'स्पेंडिंग' और वीर्य की 'स्पेंडिंग' एक-दूसरे को पर्यायवाची हो गये हैं। शॉपिंग के ज़रिये कामनाओं की आर्गेज़्मिक पूर्ति का दावा किया जाता है और यौन संदर्भों में इस्तेमाल की जाने वाली शब्दावली उपभोक्ता गतिविधियों में जम कर इस्तेमाल की जा रही है। विज्ञापन जगत ने घोषित कर दिया है कि सेक्स माल बेचने के सर्वाधिक आकर्षक माध्यमों में से एक है। इस तरह दिल्ली देश के एक ऐसे महानगर के रूप में उभरा जिसकी न केवल पचास फ़ीसदी आबादी फ़्लोटिंग थी, बल्कि जिसमें सबसे ज़्यादा कारें थीं। जहाँ सबसे ज़्यादा लोग सेलफ़ोन इस्तेमाल कर रहे थे। जहाँ ज़्यादा मल्टीप्लेक्स और नये कहवाघर थे। दिल्ली के बाशिंदे ख़रीद-फ़रोख़्त पर देश में सबसे ज़्यादा ख़र्च कर रहे थे। यह कोई संयोग ही नहीं है कि पश्चिम में यौन क्रांति की अवधि वही

है जब वहाँ पहली बार मोटरचालित वाहनों की क्रांति हुई थी। वहाँ केवल एक नया मोबाइल स्पेस यौन क्रांति की चिंगारी सुलगाने के लिए काफ़ी था। दिल्ली में तो ऐसे पाँच-पाँच स्पेस हैं जिन्हें इस शहर ने देश के किसी भी अन्य क्षेत्र की अपेक्षा सबसे ज़्यादा उत्सुकता के साथ अपनाया है।

अंजलि कपूर से शेफाली ज़रीवाला तक: सेक्शुॲलिटी का इतिहास बतर्ज़ मीडिया

नब्बे का दशक दिल्ली के लिए नयी अर्थ नीति का ही नहीं नयी सेक्शुॲलिटी का दशक भी समझा जाना चाहिए। फरवरी 1995 कोई बहुत पुरानी तारीख़ नहीं है। लेकिन, मीडिया की निगाहों से देखें तो वक़्त की वर्चुअल रफ़्तार के कारण दिल्ली की सेक्शुॲलिटी के पिछले दस-बारह साल के इतिहास में यह तारीख़ दशकों पुरानी बर्फ़ में जमी हुई लगेगी। इसी महीने एक शनिवार को बार काउंसिल ऑफ़ इंडिया ने काफ़ी उत्तेजक वाद-विवाद के बाद फ़ैसला किया था कि वह अपनी एक महिला सदस्य के ख़िलाफ़ कार्रवाई करेगा। एडवोकेट अंजलि कपूर ने वकील के रूप में अपने पेशे से संबंधित कोई आपत्तिजनक काम नहीं किया था। उन पर आरोप यह था कि उन्होंने एक पोर्नोग्राफ़िक पत्रिका में अपनी नंगी तस्वीरें छपवा कर वकीलों की शान में बट्टा लगा दिया है। बार काउंसिल ने जैसे ही यह निर्णय लिया, नारी अधिकारों के लिए संघर्षरत महिला संगठनों में बहस शुरू हो गयी कि क्या किसी महिला को अपनी देह के इच्छानुसार इस्तेमाल का अधिकार नहीं मिलना चाहिए? महिला संगठन एक तरफ़ तो अंजलि कपूर के इस अधिकार के पक्ष में खड़े थे, और दूसरी तरफ़ महिलाओं ने दिल्ली हाईकोर्ट में पोर्नोग्राफ़िक पत्रिकाओं के प्रकाशन पर रोक लगाने के लिए याचिका भी दायर कर रखी थी। बहस में सीधे-सीधे दो पक्ष थे: एक तरफ़ ऋतु मेनन जैसे नारीवादियों की आवाज़ थी जिसका दावा था कि औरतों को पोर्नोग्राफ़िक सामग्री पढ़ने में कोई दिलचस्पी नहीं होती; दूसरी तरफ़ विमेंस पॉलिटिकल वॉच की अध्यक्ष वीणा नैयर जैसी हस्तियाँ थीं जिनकी मान्यता थी कि 'औरत का भी मर्द की ही तरह एक सेक्शुअल वजूद होता है। निश्चित रूप से पोर्नोग्राफ़िक पत्रिकाओं का एक महिला पाठक वर्ग भी है।' इस बहस में महिला दक्षता समिति की विनय भारद्वाज की राय भी उल्लेखनीय थी। वे अंजलि कपूर के अधिकार की पैरोकारी करते हुए भी कह रही थीं कि उनकी अपनी किशोर वय की पुत्री के लिए ऐसी कोई औरत न तो अनुकरणीय आदर्श हो सकती है और न ही होगी। अंजलि कपूर का क्या हुआ, यह किसी को आज तक पता नहीं है। सुरक्षित रूप से माना जा सकता है कि वे दिल्ली की किसी मध्यवर्गीय कॉलनी में एक अनाम ज़िंदगी बिता रही होंगी। उस समय किसी पत्रकार या किसी एथनोग्राफ़र ने उनसे यह पूछने की ज़हमत नहीं उठायी कि आख़िर वकालत जैसे पेश से जुड़े होने के बाद भी उन्होंने न्यूड मॉडल बनना क्यों स्वीकार किया था। क्या वे अपनी सेक्शुॲलिटी व्यक्त करने के लिए बेचैन थीं, या किसी दबाव, धोखे या आर्थिक प्रलोभन के वशीभूत हो कर उन्होंने अपनी देह का ऐसा इस्तेमाल होने दिया?[8]

सन् 2003 में दो मई को इंजीनियरिंग की बीस वर्षीय छात्रा शेफाली ज़रीवाला ने जैसे इसी सवाल का जवाब दिया हो, 'यह इक्कीसवीं सदी है। आख़िर लोगों को पॉर्न मैगज़ीन पढ़ने से क्यों हिचकना चाहिए?' ये वही शेफ़ाली ज़रीवाला थीं जो *डीजे डॉल* नामक सुपरहिट म्यूज़िक विडियो की शुरुआत में ही पब में अपने बॉय फ्रेंड का इंतज़ार करते हुए एक पॉर्न पत्रिका पढ़ती नज़र आती हैं और अपने प्रेमी के नाराज़ होने के बावजूद आख़िर तक उसे नहीं फेंकतीं। वे उसे मनाने के लिए 'काँटा लगा' की तर्ज़ पर कामोद्दीपक नृत्य करते हुए उस पत्रिका को जलाने की एक्टिंग भी करती हैं, पर जब म्यूज़िक वीडियो ख़त्म होता है तो कैमरा दर्शकों को दिखाता है कि उनकी कमर में प्रेमी की बाँह है पर पीछे बेल्ट में वही अधजली पॉर्न पत्रिका खुसी हुई है। *डीजे डॉल* एक ऐसा म्यूज़िक वीडियो है जो सुबह से शाम तक कम से कम पाँच बार टीवी के किसी न किसी चैनल पर पूरे साल दिखाया जाता रहा। इसके ऑडियो को पूरे उत्तर भारत के चौराहों और विवाह समारोहों में लगातार बजते हुए सुना जा सकता था। अंजलि कपूर के न्यूड्स सिर्फ़ इतना साबित कर पाये थे कि शहर में सेक्शुअल अभिव्यक्ति का जोखिम उठाकर बीच बहस में आने के बावजूद इंसान अनाम रह कर ज़िंदगी गुजार सकता है, पर पोर्नोग्राफ़ी पढ़ती हुई शेफ़ाली को मीडिया और मार्केट ने नयी पीढ़ी के लिए एक नयी नायिका का दर्जा दे दिया। 'काँटा लगा' एक ऐसे क्षण के रूप में उभरा जिसे इतिहास में दर्ज कराने के लिए न तो किसी पत्रकार की ज़रूरत थी और न ही किसी एथनोग्राफ़र की। शहरी सेक्शुॲलिटी को इसके ज़रिये एक नयी परिभाषा मिली। प्राइवेट पब्लिक

हो गया। पोर्नोग्राफ़ी से निकलने वाली दृश्यरति (वॉयरिज़्म), मद्यपान और समूह नृत्य के देह-केंद्रीय पहलू (प्रदर्शनप्रियता), सेक्स की ताक़त, उसकी बेचैनी और शहरी स्पेस की ऐंद्रिकता साकार हो गयी।

दिल्ली का मीडिया यहीं नहीं रुका। उसने आधुनिक दुनिया की सबसे पहली, सबसे कामयाब और सबसे मशहूर सेक्स मैगज़ीन की गोल्डन जुबली समारोहपूर्वक मनायी। *प्लेबॉय* का इतिहास जानने के लिए किसी को खुशवंत सिंह के पास जाने की ज़रूरत नहीं पड़ी। क़रीब बीस साल पहले खुशवंत देश के उन कुछ एक लोगों में से एक थे जो *प्लेबॉय* के अंक बाक़ायदा घोषित रूप से आयात करते थे। हवाई अड्डे पर अश्लीलता के आरोप में पत्रिका ज़ब्त हो जाने पर उनकी क़लम इसे अपने लोकतांत्रिक अधिकारों का हनन करार देती थी। मीडिया की दुनिया में माना जाता था कि सरदारजी के पास *प्लेबॉय* के सभी गर्मागर्म अंक सिलसिलेवार होंगे। लेकिन, उनके निजी अभिलेखागार में जाने की ज़हमत उठाये बिना दिल्ली वालों को जुलाई 2003 के मध्य में *प्लेबॉय* का तक़रीबन पूरा इतिहास समारोहपूर्वक पता चल गया। दिल्ली के अपने मीडिया के ज़रिये उन्हें पत्रिका के प्रकाशक-मालिक ह्यू हेफ़नर और उनकी अर्धनग्न प्लेमेट सुंदरियों की रंगीन तस्वीरें भी देखने को मिल गयीं।

1953 की जुलाई में *प्लेबॉय* का पहला अंक प्रकाशित हुआ था। हेफ़नर का दावा था कि उनकी पत्रिका सेक्स क्रांति के संदर्भ में जो भूमिका निभाने जा रही है, उसका महत्व अल्फ़्रेड किंसी द्वारा किये गये अमेरिकी पुरुषों के यौन व्यवहार की विख्यात अध्ययन रपट से ज़रा-सा ही कम है। हम जानते हैं कि हेफ़नर ने अपना वायदा पूरा करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। लेकिन, *प्लेबॉय* की पचासवीं जयंती मनाने वाला दिल्ली का अपना मीडिया भी पाठकों से एक ख़ास तरह का वायदा कर रहा था जिसका भूगोल हेफ़नर के वायदे से कहीं ज़्यादा लंबा-चौड़ा और गहरा था। दिल्ली के मीडिया ने न केवल उसके अल्फ़्रेड किंसी का काम भी किया। उसने सेक्स, सेक्शुॲलिटी, विवाह और बदलते हुए रिश्तों में गहरी दिलचस्पी दिखायी। *टाइम्स ऑफ़ इंडिया* के 'डेल्ही टाइम्स', *हिंदुस्तान टाइम्स* के 'एचटी सिटी', *पायनियर* के 'वीवासिटी', *नवभारत टाइम्स* के 'हेलो दिल्ली', *दैनिक हिंदुस्तान* के 'हिंदुस्तान सिटी' और *दि एशियन एज* के महानगरीय परिशिष्ट 'दि डेल्ही एज' जैसे अख़बारों ने तरह-तरह के यौन सर्वेक्षण आयोजित किये, प्रतिष्ठित सेक्स विशेषज्ञों और मनोचिकित्सकों को आमंत्रित किया ताकि पाठकगण अपनी यौन समस्याओं पर उनकी राय ले सकें। अपने रंगारंग पृष्ठों में यौन क्रांति का संदेश दे कर और ख़ुद को इस क्रांति का वाहक और औज़ार बना कर पेश करते हुए इस मीडिया ने *डिबॉनेयर* और *सैवी* जैसी मुंबइया पत्रिकाओं को पीछे छोड़ दिया। इंटरनेट के साथ मिलकर ये अख़बार धरती से आसमान तक दिल्ली की सेक्शुॲलिटी को ध्वनित करने लगे। इन अख़बारों में सबसे आगे था *डेल्ही टाइम्स* जिसके कॉलमों में तो समूचा शहर प्राक्क्रीड़ा करता हुआ दिख रहा था। अगर यह यौन क्रांति नहीं थी, तो उसकी तैयारी ज़रूर थी।

अंजलि कपूर प्रकरण की तरह 'डीजे डॉल' और मीडिया पर भी अश्लीलता के आरोप लगे और आज भी लग रहे हैं, लेकिन ज़ाहिर है कि 1995 की तरह कोई किसी के ख़िलाफ़ कार्रवाई करने की हैसियत में नहीं रह गया है। नैतिकता की राजनीति पूरी तरह बदल चुकी है। यह मीडिया फ़्री मार्केट को फ़्री सेक्स के रूप में परिभाषित कर चुका है। औरत और मर्द की देह को कामोत्तेजक और सुलभ मुद्राओं में पेश करके इसने अपनी प्रसार संख्या ख़ासी बढ़ा ली है। देह व्यापार के रूप उसके लिए विज्ञापन से होने वाली आमदनी के स्रोत बन चुके हैं। मीडिया शहर के भूगोल को नये सिरे से रच रहा है। भूमंडलीकरण के तहत होने वाली संचार क्रांति और बाज़ारीकरण के कारण दिल्ली को कई नये तरह के स्पेस मिल गये हैं जिनके आधार पर एक नयी सेक्शुअल दिल्ली के मानचित्र की रेखाएँ खींची जा रही हैं। इस नयी सेक्शुअल दिल्ली में हस्तमैथुन, समलैंगिकता, सामूहिक यौनक्रिया, पोर्नोग्राफ़ी का प्रसार, देह-व्यापार, प्रेम के नये रूपों, पॉप साइकोलॉजी, रोज़ाना की ज़िंदगी के सेक्शुॲलाइजेशन और यौन प्रतीकों की भाषा के साथ उपभोक्तावाद के अंतर्गुंफन का बोलबाला है।

नयी सेक्शुॲलिटी: नया भूगोल

नयी सेक्शुॲलिटी का भूगोल वह नहीं है जो राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के सरकारी मानचित्र में साफ़-सुथरे ढंग से दिखाया गया है। इस भूगोल की सीमाएँ ठोस सूत्रीकरण से परे एक तरह के आत्मगत द्वैध में उकेरी जा रही हैं। इन सीमाओं के बीच कामनाओं का ऐंद्रिक संसार है जो सेक्शुॲलिटी के पुराने रूपों को अस्थिर कर रहा है।

यह एक ऐसा भूगोल है जिसके कई सीमांत हैं। मसलन, शहर की घनी मध्यवर्गीय बस्तियों में ऐसे कई अड्डे हैं जिन्हें लोग केवल हस्तमैथुन के लिए इस्तेमाल करते हैं। एक ख़ास समय पर उन्हें सामूहिक रूप से हस्तमैथुन करते हुए देखा जा सकता है। लाजपत नगर की अमर कॉलनी का नाला एक ऐसे ही अड्डे के रूप में मीडिया में चर्चित हुआ है। अख़बार में छपे और इंटरनेट पर जारी किये गये हस्तमैथुन के इस अड्डे के वर्णन से दिल्ली की नयी सेक्शुॲलिटी के कुछ आयाम सामने आते हैं:

राँची से दिल्ली में तक़रीबन कितने साल भर पहले पढ़ने के लिए आयी रोमिला सहोता नामक छात्रा ने यह झकझोर देने वाला वाक़या सुनाया, "मैं अपने साथ रहने वाली लड़कियों के साथ कमरे की दहलीज़ पर बैठी थी कि अचानक हमने ज़मीन पर एक छाया हिलते हुए देखी। नज़र उठायी तो हमारे होश उड़ गये। हमने देखा कि वह व्यक्ति सीधे हमारी आँखों के सामने हस्तमैथुन कर रहा है। मैं बता नहीं सकती कि हमने उस क्षण किस क़दर डर और घृणा महसूस की। स्वाभाविक था कि हम वहाँ से मुँह छिपा कर भाग जातीं। इसके अलावा उस समय और कुछ क्या किया जा सकता था। ...मामला यहीं ख़त्म नहीं हुआ। हस्तमैथुन करने वाला वह अकेला आदमी नहीं था दर्जनों लोग यही करते थे। नाले के पास प्रत्येक दिन हमने दो-तीन लोग यही करते देखे।" ... रोमिला अमर कॉलनी में रहती है जो अपने पुराने फ़र्नीचर मार्केट के लिए जाना जाता है। दिल्ली में हर साल क़रीब दो लाख छात्र उच्च शिक्षा और नौकरियों के लिए आते हैं। इनमें से आधी लड़कियाँ होती हैं। अमर कॉलनी के बहुत से घर उन्हें वाजिब किराये पर पेइंग गेस्ट बना लेते हैं। हज़ारों लड़कियाँ यहाँ रहती हैं। इस हस्तमैथुन की घटना की लड़कियों ने पुलिस में एफ़आईआर भी दर्ज करायी। पुलिस ने कार्रवाई करने का वायदा भी किया, पर कोई ख़ास नतीज़ा नहीं निकला। ... यह इलाक़ा मुख्य सड़क से दूर है। यहाँ ऐसे कई इलाक़े हैं जहाँ ख़ुफ़िया हरक़तें की जा सकती हैं। कई आवारागर्द अमर कॉलनी के गंदे नाले में रोज़ाना पहुँचते हैं।[9]

सवाल यह है कि खुलेआम हस्तमैथुन करने वाले ये लोग कौन हो सकते थे। ये इमारती काम में लगे हुए मजदूर हो सकते थे या फिर कॉलेजों के छात्र हो सकते थे। एक जानकारी के अनुसार दिल्ली के क़रीब दस लाख रिक्शेवालों में से आठ लाख ऐसे हैं जो या तो अकेले रहते हैं या फिर उनकी शादी नहीं हुई है। वज़ीरपुर इंडस्ट्रियल एरिया जैसे क्षेत्रों में रहने वाले ज़्यादातर मज़दूर अकेले रहते हैं। इनमें से कई लोग जी.बी. रोड की तवायफ़ों के पास महीने में एक या दो बार जाते हैं। लेकिन हस्तमैथुन करके अपनी यौन आवश्यकताओं को पूरा करना ज़्यादा आसान है।[10] हॉस्टल में रहने वाले युवा छात्रों के बीच एक-दूसरे के सामने सामूहिक हस्तमैथुन की परिघटना कोई नई नहीं हैं। लेकिन, सार्वजनिक रूप से हस्तमैथुन की घटना और किसी एक स्थान का उसके लिए विशेष रूप से उपयोग करना निश्चित रूप से नयी बात है। हस्तमैथुन यौन व्यवहार का हमेशा से अंग रहा है लेकिन, नयी सेक्शुॲलिटी तरह-तरह के सेक्स सर्वेक्षणों के ज़रिये साबित करती है कि वह कोई रोग या बुरी आदत नहीं है, बल्कि एक सामान्य और स्वाभाविक यौन आचरण है। *डिबॉनेयर* के सेक्स सर्वे ने चौंका देने वाली जानकारी दी थी कि तीस फ़ीसदी से ज़्यादा शहरी पुरुष ऐसे हैं जो अपनी पत्नियों से नियमित सम्भोग करने के बावजूद नियमित रूप से हस्तमैथुन भी करते हैं क्योंकि उन्हें हस्तमैथुन वाला यौनानंद स्त्री के साथ सम्भोग से नहीं प्राप्त होता।

दिल्ली 'पुरुष समलैंगिकों की राजधानी' बन चुकी है। शाम सात बजे नेहरू पार्क, सेंट्रल पार्क, चिराग़ दिल्ली का जहाँपनाह फ़ॉरेस्ट, धौला कुआँ का बस स्टैंड और गार्डन, इंडिया गेट का लॉन, अंतर्राज्यीय बस अड्डा, दिल्ली के हर इलाक़े में फैले हुए मसाज पार्लर और पाँचसितारा होटलों के हैल्थ क्लबों पर समलैंगिक कब्ज़ा सा कर लेते हैं। यहाँ सेक्स पार्टनरों की तलाश में आधी रात तक 'क्रूज़िंग' होती है। समलैंगिकता के इन सीमांतों पर हज़ारों हिजड़े और कोठी (स्त्रैण हाव-भाव वाले पुरुष) देह व्यापार का बाज़ार गर्म रखते हैं। इस बाज़ार में अर्थपूर्ण कामोत्तेजक इशारे, एक निगाह या एक स्पर्श भर से संबंध बनते हैं और किसी पेड़, चट्टान या किसी झाड़ी के पीछे 'रिलीज़' होते ही संबंध खत्म हो जाता है। यह एक नया सेक्स बाज़ार है जो पूरी तरह 'अनरेगुलेटेड' है यानी जो अभी तक किसी रैकेट या दलालों के गिरोह की गिरफ़्त में नहीं आया है। रिक्शेवाले और कूड़ा बीनने वाले अपने पसीने से गँधाते जिस्म ले कर ही नहीं, अधिकारी वर्ग और कॉरपोरेट क्लास के लोग भी अपनी परफ़्यूम्ड देह के साथ यहाँ उतरते हैं। इन समलैंगिकों की यौन भाषा न हिंदी है न अंग्रेज़ी। वे जिस कूट भाषा

का इस्तेमाल करते हैं उसे फ़ारसी कहते हैं। यह ग़ालिब वाली फ़ारसी नहीं हैं। इसके तहत गुदा मैथुन कराने वाला 'कोठी' और करने वाला 'गिरिया' कहलाता है। शिश्न को 'लिकुम' और शिश्न-प्रवेश को 'धरवाना' कहते हैं। धारा 377 के कारण ग़ैरक़ानूनी करार दी गयी समलैंगिकों की इस दुनिया में पुलिसवाले को 'डुंगर' के नाम से बुलाया जाता है। दिल्ली के समलैंगिक मुखमैथुन को 'कोमेर', देह के पृष्ठभाग को 'बोतल', नितंबों को 'बिट्टू', चूचक को 'धरकी', सिगरेट को 'धुमकी', धन को 'थिपुर', चाय को 'भपकी' और खतने वाले व्यक्ति को 'चिल्कू' कहते हैं। समलैंगिकों की फ़ारसी यहीं ख़त्म नहीं हो जाती। उसमें और भी बहुत से शब्द हैं जो 'क्रूज़िंग' करते हुए इस्तेमाल किये जाते हैं जिससे इस दुनिया की सीक्रेसी क़ायम रहती है।[11]

नयी सेक्शुअॅलिटी पर दिल्ली के समलैंगिकों के प्रभाव को कम करके नहीं आँका जा सकता क्योंकि दिल्ली की एक गे वेबसाइट द्वारा लगाये गये एक तख़मीने के अनुसार राजधानी की पुरुष आबादी का कम से कम चार-पाँच फ़ीसदी हिस्सा समलैंगिक यौन व्यवहार के साथ किसी न किसी प्रकार जुड़ा हुआ है। इस अनधिकृत समाज के ज़्यादातर सदस्य विवाहित और बाल-बच्चों वाले हैं, पर उनकी बाइसेक्शुअल कामनाएँ उन्हें नियमित रूप से 'क्रूजिंग' के लिए धकेलती रहती हैं। दिल्ली के फ़ार्महाउसों और कुछ विशेष रूप से चिन्हित बार-रेस्त्रांओं में नियमित रूप से गे पार्टियों की धूम रहती है। मिसाल के तौर पर सात जून, 2003 को अँधेरिया मोड़ से तकरीबन पौने दो किमी. आगे रॉयल गार्डन में हुई गे रेन डांस पार्टी देखी जा सकती है। दस बजे रात से शुरू हुई इस पार्टी में शामिल होने की फ़ीस 350 रुपये प्रति व्यक्ति थी और हर गे भागीदार को दारू साथ लाने के लिए कहा गया था। इसी तरह चाणक्य सिनेमा के पास 'पेग्स ऐण्ड पाइन्ट्स' नामक बार में अकसर मंगलवार को रात नौ बजे से दो बजे तक गे नाइट्स आयोजित की जाती हैं। साउथ एक्सटेंशन का एक नया रेस्त्राँ 'लिज़र्ड कोर्ट' अपनी गे पार्टियों के लिए चर्चित हो चुका है।

दिल्ली की वैकल्पिक यौनिकताओं का नज़ारा हिजड़ों और स्त्री समलैंगिकों की गतिविधियों के बिना पूरा नहीं हो सकता। पुरुष समलैंगिकों के मुक़ाबले ये दोनों दायरे हद दर्जे की गोपनीयता के आवरण से ढँके रहते हैं। लेकिन धीरे-धीरे इनके बाहर आने की प्रक्रिया भी चल रही है। तीस हज़ारी कोर्ट के बाहर हिजड़ों के एक नायक की गोली मार कर की गई हत्या ने मीडिया का ध्यान उनकी सीक्रेट सोसाइटी की तरफ़ मोड़ दिया है और उनकी गतिविधियों के बारे में राजधानी का समाज दिलचस्पी लेने लगा है।[12] पिछले दो साल से राजधानी के थियेटर सर्किल में हिजड़ों की ज़िंदगी पर किये जाने वाले नाटक 'जानेमन' की ज़बरदस्त धूम रही है। इसका हर शो हाउसफ़ुल जाता रहा है। वैकल्पिक यौनिकता पर काम कर रहे संगठनों का एक मोर्चा 'प्रिज़्म' स्त्री समलैंगिकों का अध्ययन करने की योजना पर काम कर रहा है। उसने क़रीब ढाई-तीन सौ ऐसी स्त्रियाँ तलाश कर ली हैं जिनसे बातचीत करके वह लेस्बियन यौन व्यवहार का आख्यान तैयार करेगा।

नयी सेक्शुअॅलिटी ने दिल्ली को देह व्यापार के कुछ ऐसे नये रूप प्रदान किये हैं जो अपने-आप में इस सेक्शुअॅलिटी के नयेपन का प्रमाण हैं। पहले देह व्यापार के सिर्फ़ दो रूप प्रचलित थेः चकला घर और कॉलगर्ल रैकेट। पिछले दस-बारह सालों में मसाज पार्लरों, एस्कॉर्ट सर्विसों, फ़्रेंडशिप क्लबों और नक़दी या उपहारों के बदले यौन समागम के लिए प्रस्तुत लोगों के निजी अनौपचारिक दायरों के रूप में देह व्यापार की शक्ल पूरी

तरह बदल गयी है। फ्रेंडशिप क्लब की परिघटना तो ऐसी है जिसे पुराने क़िस्म के देह व्यापार की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। इसके प्रचलन ने तो हाल ही में शुरू हुए फ़ोन सेक्स को फ़ैशन से बाहर कर दिया है। फ़ोन सेक्स ने ही पहली बार अख़बारों के ज़रिये विज्ञापन करके सेक्स के आधुनिक जिंसीकरण का नमूना पेश किया था। फ्रेंडशिप क्लबों ने इसे चरम पर पहुँचा दिया है। हालत यह है कि जो अख़बार फ्रेंडशिप क्लबों की परिघटना को देह व्यापार के रूप में परिभाषित करने के लिए पूरे पृष्ठ की ख़बर छापता है, वही अख़बार उन क्लबों के विज्ञापनों के ज़रिये भारी-भरकम राजस्व भी कमाता है। केवल पश्चिमी दिल्ली में ही 165 फ्रेंडशिप क्लब हैं। पूरी दिल्ली में इनकी संख्या का तख़मीना अभी तक नहीं लगाया जा सका है।[13]

दिल्ली की एड्स नियंत्रण सोसाइटी द्वारा 2003 में कराये गये एक सर्वेक्षण के अनुसार दिल्ली में घोषित रूप से देह व्यापार में लिप्त वेश्याओं की संख्या 35,062 है। देह व्यापार में लगे पुरुष समलैंगिकों की संख्या इस सर्वेक्षण ने 7,532 आँकी है। इसी तरह सेक्स के धंधे से रोज़ी कमाने वाले हिजड़ों की संख्या 7,317 है। दिल्ली में 35,442 आवारा बच्चे हैं जिनका कोई स्थानीय अभिभावक नहीं है और 205 जगहों पर ये बच्चे पैसे के बदले खुद को सेक्स ऐक्ट के लिए उपलब्ध कराते हैं। दिल्ली में रोज़ करीब 35000 ट्रक ड्राइवर आते हैं जिनके बारे में माना जा सकता है कि उनका यौन जीवन बेहद अनियंत्रित होता है। चार महीनों और 45,000 लोगों से बातचीत के बाद पूरा हुआ यह सर्वेक्षण बताता है कि देह व्यापार में लगे इन लोगों की गतिविधियाँ राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में दूर-दूर तक फैल गयी हैं। रोहिणी, बवाना, मदनगीर, त्रिलोकपुरी, नांगलोई और पांडव नगर तक सर्वेक्षण ने ऐसे 276 स्थानों की शिनाख़्त की जहाँ देह का सौदा नियमित रूप से होता है। पुरुष समलैंगिक 117 जगहों पर सक्रिय पाये गये। इनमें नेहरू पार्क या सेंट्रल पार्क जैसी जगहों के अलावा दिल्ली विश्वविद्यालय, पटपड़गंज, मयूर विहार, आनंद पर्वत और पंजाबी बाग़ जैसे इलाक़े भी शामिल हैं।

पिछले दस साल में दिल्ली में पोर्नोग्राफ़ी का अभूतपूर्व प्रसार हुआ है। आमतौर पर विज़ुअल पोर्नोग्राफ़ी के बाज़ार पर पश्चिमी पॉर्न फ़िल्मों का आधिपत्य है। भारतीय पॉर्न फ़िल्में न के बराबर हैं, जो हैं भी उनकी क्वालिटी बहुत गिरी हुई है और वे पश्चिमी पॉर्न को चुनौती दे पाने की स्थिति में नहीं हैं। अंग्रेज़ी की प्रिंट पोर्नोग्राफ़ी भी ज़्यादातर विदेशी किताबों की नक़ल है या उसका रीप्रिंट है। पोर्नोग्राफ़ी में विशुद्ध भारतीय योगदान देखना हो तो हिंदी की प्रिंट पोर्नोग्राफ़ी पर नज़र डालनी चाहिए। दिल्ली में यह बाज़ार बिना कोई ख़ास गोपनीयता अपनाये हुए ख़ूब फल-फूल रहा है। 1981 की शुरुआत में पोर्नोग्राफ़ी के विक्रय अड्डे या तो पुरानी दिल्ली में दरीबा कलाँ और चाँदनी चौक के फुटपाथ होते थे या फिर आईएसबीटी में दीवारों के सहारे ज़मीन पर लगी हुई पीली पन्नी चढ़ी हुई सेक्सी किताबें बिकती थीं। युवाओं और छात्रों के बीच हिंदी पोर्नोग्राफ़ी की दो किताबें क्लासिक का दर्ज़ा पा चुकी थीं। एक थी *भांग की पकौड़ी* जिसकी कथावस्तु इनसेस्ट की घटनाओं के आस-पास बुनी गयी थी। दूसरी थी *स्वर्ग की नसैनी* यह एक ऐसे आवारागर्द आशिक़ की कहानी थी जो अपनी तक़रीबन भयंकर यौन शक्ति और विकराल शिश्न के दम पर सारे ज़माने में घूम-घूम कर दैहिक संतुष्टि के लिए छटपटाती औरतों को तुष्ट करता घूमता है। विक्टोरियन प्यूरिटनिज़्म के मध्यवर्गीय माहौल के मुक़ाबले इन अंडरग्राउंड कथानकों में कोई अपराधबोध नहीं था। इन पॉर्न उपन्यासों की शब्द योजना पर बोलचाल और गॉसिप की यौन शब्दावली हावी थी। इनके लेखक थे कोई मस्तराम। यह एक फ़र्ज़ी नाम था जो आज तक जारी है। लेकिन आचार्य मस्तराम का यह कामसूत्र अब बदल गया है। इसकी भाषा संस्कृतनिष्ठ हो गयी है। इसमें सेक्स ऐक्ट की घटनाओं को एक समस्यापूर्ति के रूप में पेश किया जाता है। इसका मुख्य मोड कन्फ़ैशन है। इससे पता चलता है कि सेक्शुऍलिटी का पश्चिमी डिस्कोर्स लोकप्रिय स्तर पर कहाँ तक घर कर चुका है। दूसरे, हिंदी की यह मस्तराम छाप पोर्नोग्राफ़ी सेक्शुअल आडेंटिटी के विषय में भी चिंतित नज़र आती है। उसमें समलैंगिक और बाइसेक्शुअल सेक्स ऐक्ट आमतौर से मिलने लगा है। दिल्ली के अर्धशहरी बाज़ार पर हिंदी की इसी प्रिंट पोर्नोग्राफ़ी का क़ब्ज़ा है। एक किताब दस रुपये की बिकती है। इसके अलावा दरियागंज, सदर बाज़ार, नयी और पुरानी दिल्ली के रेलवे स्टेशन, सभी मल्टीप्लेक्सों में फुटपाथ पर पल्प साहित्य बेचने वाली दुकानों से प्रिंट पोर्नोग्राफ़ी आसानी से ख़रीदी जा सकती है। नब्बे के दशक में इलाहाबाद से विकी भार्गव द्वारा प्रकाशित *फ़ेंटेसी* नामक पॉर्न पत्रिका का दिल्ली के फुटपाथी बाज़ार पर हमला हुआ था। उसकी कामयाबी देख कर अचानक कई पॉर्न पत्रिकाएँ निकलने लगी थीं। यह पत्रिका

आज भी बिकती है और मुंबई से निकलने वाली *डिबॉनेयर* के भी ग्राहक हैं। लेकिन अब पहले जैसी बात नहीं रही, क्योंकि पहले केवल ये दोनों पत्रिकाएँ ही यौन पत्रकारिता की ज़रूरतें पूरी करती थीं। आज यह ज़रूरत *कॉस्मो* जैसी लाइफ़ स्टाइल पत्रिकाओं समेत सामान्य मीडिया पूरी कर रहा है। कनॉट प्लेस के प्रतिष्ठित बुक स्टोर्स के शो केसों में सेक्स संबंधी पुस्तकों के एक साथ पंद्रह-पंद्रह टाइटिल लगे देखे जा सकते हैं। प्रकाशकों का मानना है कि कुल मिलाकर यौन संबंधी साहित्य की बिक्री में ज़बरदस्त उछाल आया है। बाज़ार में कई तरह के *कामसूत्र* आ चुके हैं। सभी का दावा है कि वे ही आचार्य वात्स्यायन द्वारा रचे गये असली कामसूत्र हैं। इनमें एक अंग्रेज़ी का *फ़ोटोग्राफ़िक कामसूत्र* है जिसकी क़ीमत पाँच सौ रुपये से भी ज़्यादा है। संस्कृत से हिंदी में किन्हीं आचार्यजी का अनुवाद किया गया दो सौ रुपये का *कामसूत्र* भी है। एक किन्हीं गुप्ताजी द्वारा प्रस्तुत *कामसूत्र* भी है जो दिल्ली के अर्धशहरी इलाक़ों के फ़ुटपाथ पर दस रुपये की दर से बिक रहा है। गुप्ता जी ने इस किताब के आख़िर में वात्स्यायन के साथ मार्क्स और एडलर के नाम से कुछ काम संबंधी विचार भी जोड़ दिये हैं।

सर्वेक्षणों और मीडिया में छपी ख़बरों के ज़रिये तैयार किये गये दिल्ली के सेक्शुअल भूगोल के मानचित्र पर इस आशय का शक हमेशा किया जा सकता है कि यह कितना प्रामाणिक है। दरअसल, इसकी प्रामाणिकता की डिग्री उतनी ही है जितनी किसी आत्मगत तथ्य में आवेशित की जा सकती है। इस नक़्शानवीसी के पीछे तीन समीकरण काम करते हुए लग रहे हैं। पहला समीकरण सेक्स, सेक्शुॲलिटी, सिटी और आधुनिकीकरण का है जो इस नयी सेक्शुॲलिटी को भारतीय पूँजीवाद के विकास के ताज़ा चरण से जोड़ता है। दूसरा समीकरण परिवार, प्रेम और रिश्तों की नयी संरचना दर्शा रहा है। और, तीसरा समीकरण एक ख़ास तरह की सेक्शुअल इंजीनियरिंग की तरफ़ इशारा कर रहा है जिसमें निकट भविष्य की सेक्शुअल पॉलिटिक्स के डिम्बाणु हैं। जैसे-जैसे ये समीकरण ठोस होंगे, दिल्ली का सेक्शुअल भूगोल भी प्रामाणिक होता चला जायेगा।

पहला समीकरण: सेक्स, सेक्शुॲलिटी, सिटी और आधुनिकीकरण

इफ़ इट मेक्स यू हैपी/इट कांट बी दैट बैड
इफ़ इट मेक्स यू हैपी/दैन व्हाई दि हैल आर यू सैड

शेरिल क्रो द्वारा गाया हुआ गीत

मई 2003 के पच्चीसवें दिन रविवार की फ़ुर्सत में *टाइम्स ऑफ़ इंडिया* ने संपादकीय पृष्ठ पर एक बहस छेड़ी जिसका शीर्षक था, 'सेक्सप्लिसिट इंडियाः आर वी फाइनली ओपनिंग अप'। इसमें विनय कामत और निखत काज़मी ने हिस्सा लिया। दोनों ही टाइम्स ग्रुप के घरेलू लेखक थे। यौन क्रांति की वांछनीयता पर दोनों के बीच कोई मतभेद नहीं था। झगड़ा केवल यह था कि क्या वास्तव में सेक्स क्रांति हो रही है या नहीं; और अगर हो रही है तो उसका विस्तार और गहराई कितनी है। कामत ख़ुश थे कि आर्थिक सुधारों के प्रभाव में मौजूदा पीढ़ियाँ भी सुधार के रास्ते पर चल निकली हैं। विवाह की संस्था में पारदर्शिता का समावेश हो गया है यानी लोग मानने लगे हैं कि विवाहेतर संबंध तो स्वाभाविक ही हैं। कामत ने सेक्स से संबंधित खुलेपन को भूमंडलीकरण की प्रक्रिया से जोड़ा और ऐलान किया कि 'लव इज फ़्रीअर दैन मार्केट'। कामत के मुक़ाबले बहस कर रही निखत काज़मी को इस बात से इनकार नहीं था कि यौन स्वच्छंदता काफ़ी बढ़ गयी है पर उन्हें दुःख इस बात का था कि समाज ने अभी इसे स्वाभाविक मानना शुरू नहीं किया है। उन्होंने चुनौती दी कि आज भी सड़क पर खुलेआम कोई किसी का चुम्बन नहीं ले सकता, बिना विवाह किये साथ-साथ रहने वाले गोपनीयता को ही श्रेयस्कर मानते हैं और सेक्स का मुख्य स्थल अभी भी बुझी हुई रोशनियों वाला शयन कक्ष ही है। कामत बनाम काज़मी की इस बहस के ठीक नीचे प्रतिष्ठित स्तम्भ लेखिका बाची करकरिया ने मई के महीने में ही 'डेल्ही टाइम्स' में छपे कामसूत्र सेक्स सर्वे के नतीजों को किसी ओलम्पिक प्रतियोगिता की भाषा में विश्लेषित किया था यानी किसने किसको पछाड़ दिया है, कौन टॉप सीड था और कौन कितने नंबर ले पाया। जाहिर है कि इस बहस में कोई रहस्य नहीं था। टाइम्स ग्रुप से बाहर के किसी व्यक्ति की राय शायद इसलिए नहीं ली गयी थी कि वह कामसूत्र सेक्स सर्वे के आँकड़ों से कुछ अवांछित नतीजे निकाल सकता था। वैसे यह सेक्स सर्वे कराने वाली तीन डॉट कॉम कंपनियों में एक *इंडियाटाइम्सडॉटकॉम* थी जिसके मालिक वही हैं जिनके हाथों में टाइम्स ग्रुप की बागडोर है।

मीडिया साफ़तौर पर बता रहा है कि शहर की सेक्शुॲलिटी का मतलब है आधुनिक जीवन के सभी दायरों का सेक्शुलाइजेशन। इसके तहत हर तर्जुबे, हर परिस्थिति, यहाँ तक कि मौसम में होने वाले परिवर्तनों, अर्थव्यवस्था और रोज़गार की संरचनाओं में होने वाली तब्दीलियों, शहर की आबादी में होने वाले बदलावों, मनोरंजन के साधनों, रहन-सहन के तौर-तरीक़ों, पहनने-ओढ़ने के फ़ैशनों, रिश्तों के विभिन्न रूपों, समाज में होने वाली हर तरह की घटना को सेक्शुअल कसौटियों पर कसा जाने लगता है। इस मामले में दिल्ली का मीडिया भारतीय पत्रकारिता की सभी पिछली परम्पराओं को लाँघता हुआ दिखता है। वह न केवल शहरी सेक्शुॲलिटी की घटनाओं को तत्परता से पकड़ने के लिए सेक्स बीट पर रिपोर्टर तैनात करता है, बल्कि वह सेक्स से संबंधित ख़बरों को गढ़ता भी है। मसलन, मौसम में आने वाली तब्दीलियों के आधार पर ऐसी क़यासबाजी की जाती है कि पारा अगर तेज़ी से चढ़ रहा है तो क्या बेडरूम का सीन भी गर्म होगा या फिर दिल्ली में मानसून आ गया है तो क्या मनोरम हवा सम्भोग करने का विशेष प्रोत्साहन नहीं देगी। दिल्ली की सर्दियाँ भी इन ख़बरों के लेखकों को यौन क्रिया का मौसमी तर्क गढ़ने का अवसर दे देती हैं। इसी तरह अंतर्राष्ट्रीय खेल प्रतियोगिताओं के बहुप्रतीक्षित मुक़ाबलों की पूर्वसंध्या पर भी यह मीडिया अटकलें लगाता है कि भारत की जीत-हार की बेडरूम में कामोत्तेजना के सीन पर क्या प्रतिक्रिया होगी। अर्धनग्न देसी-विदेशी सुंदरियों के चित्रों से भरे मीडिया के ये पृष्ठ अपनी रपटों में मद्यपान को श्रेष्ठता और अभिजन व्यवहार की विशेष अभिव्यक्ति के रूप में दिखाते हैं। समूह नृत्य और थीम पार्टियों के फ़ैशन को विशेष रूप से प्रोत्साहित करने वाले चित्रों और ख़बरों को छाप कर यह मीडिया देह के प्रदर्शन और देह के आपसी सम्पर्क से पैदा होने वाली एंद्रिक अनुभूतियों को वैधता प्रदान करता है।

यौन क्रांति पर मीडिया में चल रही इस बहस को अगर पूँजीवाद विरोधी विचारधाराओं का असर मंद पड़ जाने के संदर्भ में देखा जाये तो ऐसा लग सकता है कि कुछ ख़ास परिस्थितियों में शहरी मध्यवर्ग सेक्स ऐक्ट को अपने जीवन की सार्थकता, अपने आनंद के उत्कर्ष और अपने अनुभव की प्रामाणिकता के रूप में देखने लगा है। अस्सी के दशक के आसपास कामनाओं के सामाजिक महत्व पर चर्चा करते हुए ई. व्हाइट ने कुछ ऐसी ही परिस्थिति की व्याख्या इस प्रकार की थी:

> ...जब धर्म, देशभक्ति और परिवार जैसे सामाजिक मूल्य ध्वस्त हो जाते हैं तो सेक्स को आगे बढ़ कर ज़िम्मेदारी उठानी पड़ती है। वह हमारे लोकोत्तर अनुभवों का अकेला ज़रिया बनकर उभरता है। वह हमारे लिए प्रामाणिकता की अकेली कसौटी बन जाता है। कई चरम आनंदों को एक साथ भोगने की ललक अपने शिखर को छू लेती है... कामकला में त्रुटिहीनता और मर्मज्ञता की माँग होने लगती है। लोगों को यक़ीन हो जाता है कि सम्पूर्ण यौन अनुकूलता में ही सच्ची अंतरंगता छिपी हुई है। ज़ोर दिया जाने लगता है कि केवल सेक्स का अनुभव ही रोमांचकारी हो सकता है, केवल उसी के ज़रिये प्रेम हासिल किया जा सकता है और केवल सेक्स के आधार पर ही पता लगाया और दिखाया जा सकता है कि कौन किस लायक़ है...

दिल्ली के मीडिया में सेक्स ऐक्ट की केंद्रीयता और सम्भोग की क्रियात्मक विविधताओं पर दिये जा रहे ज़ोर को शायद इस कथन की रोशनी में ज़्यादा अच्छी तरह समझा जा सकता है। सेक्स विशेषज्ञ संजय चुग से अपनी यौन समस्याओं का समाधान पूछने वाले पाठकों में कई ऐसे हैं जो अपने पार्टनर को पूरा आनंद दिये बिना ही स्खलित हो जाते हैं। चुग के पास ऐसे पाठकों के लिए 'शिश्न-व्यायाम' का लम्बा सुझाव है जिसे वे आयुर्विज्ञान की शब्दावली में बड़ी सफ़ाई से वर्णित करते हैं। एक दूसरे यौन सलाहकार अशोक जैन अपने ऐसे ही चिंतित पाठक को *मास्टर ऐण्ड जॉनसन* तकनीक इस्तेमाल करने की सलाह देते हैं। संभवतः स्थानाभाव के कारण *नवभारत टाइम्स* के 'हेलो दिल्ली' परिशिष्ट में लिखने वाला यह विशेषज्ञ इस तकनीक का ब्यौरा नहीं दे पाता, लेकिन कम से कम उसका जवाब प्रश्नकर्ता के दिमाग़ में इतना साफ़ कर देता है कि आधुनिक सेक्सोलॉजी के पास उसकी समस्या का कोई न कोई समाधान है ज़रूर। वह चाहे तो विशेषज्ञ के पास निजी तौर से जा कर तकनीक सीख सकता है। 'वीवासिटी' के कालमों में चुम्बन लेने की विभिन्न विधियों का पूरा मैनुअल छप चुका है। कॉस्मो

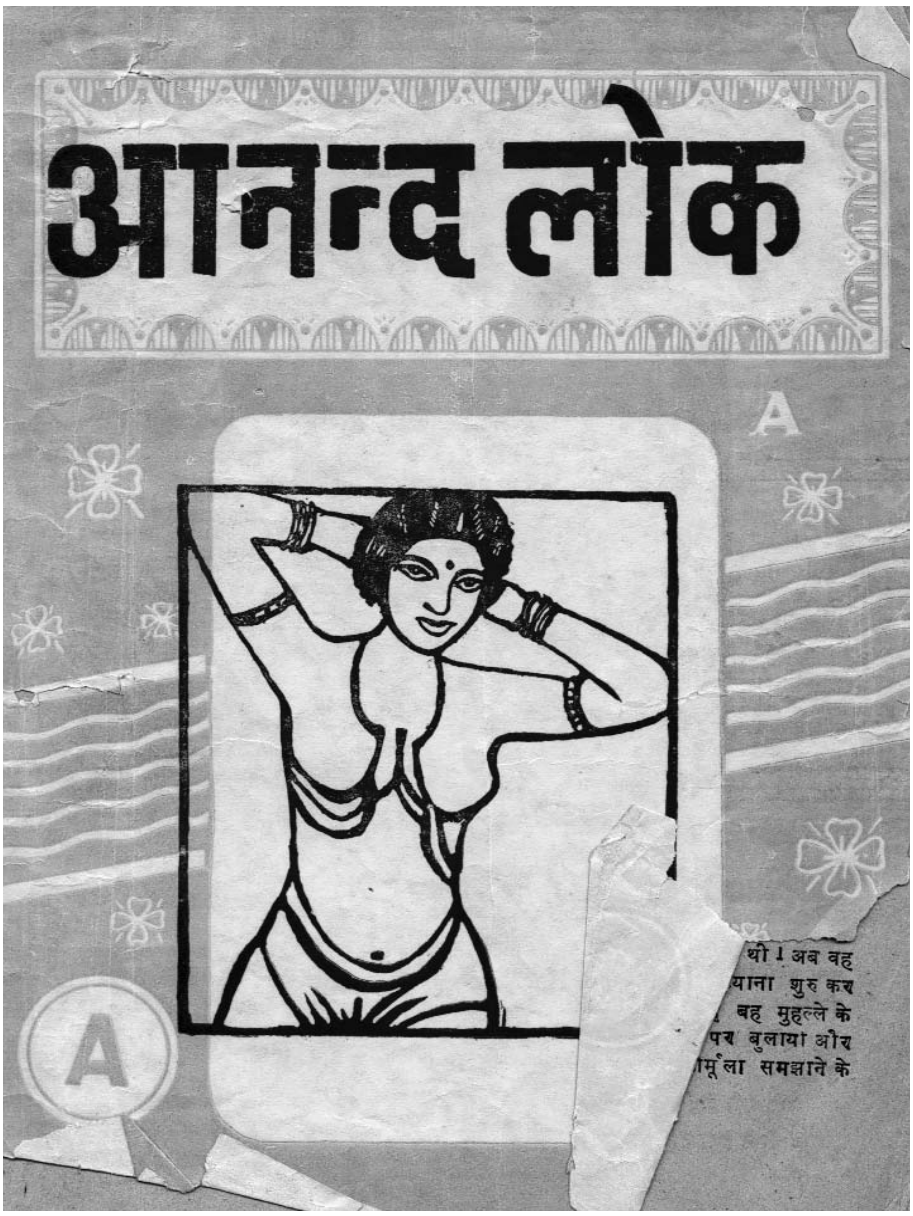
आनन्द लोक
A
A
थी। अब वह
याना शुरु कर
वह मुहल्ले के
पर बुलाया और
ार्मूला समझाने के

जैसी 'लाइफ़ स्टाइल' पत्रिकाएँ तो संभोग में चरम आनंद प्राप्त करने वाली तकनीकों का तुलनात्मक अध्ययन प्रकाशित करने में वात्स्यायन के *कामसूत्र* से भी आगे जा चुकी हैं। यौन तकनीक का यह विमर्श मीडिया में बिखरा पड़ा है और अन्य सामग्री के साथ तक़रीबन मुफ़्त में उपलब्ध है। यौन तकनीकों पर ऐसी सार्वजनिक चर्चा भारत के इतिहास में पहले कभी नहीं देखी गयी। मीडिया एक नया *कामसूत्र* लिख रहा है।

दूसरा समीकरण: परिवार, प्रेम और रिश्ते

> ग़ैर-पश्चिमी संस्कृतियों में... प्रयोग और अनुभव द्वारा कामकला की शिक्षा पर आमतौर से स्त्रियों की इजारेदारी होती थी। उस ज़माने में तक़रीबन हमेशा ही कामकला महिलाओं के एक ख़ास समूह तक ही सीमित रहती थी। रखैलें, वेश्याएँ या अल्पसंख्यक धार्मिक समूहों की सदस्याएँ इस विद्या में मर्मज्ञता विकसित करती थीं। एक आदर्श के रूप में इयत्ता आधारित प्रेम एक ऐसे समाज में विकसित होता है जिसमें हर एक के पास कामकला में पारंगत होने के मौक़े रहते हैं। यह प्रेम मान कर चलता है कि 'भद्र' समझी जाने वाली महिला और परम्परानिष्ठ समाज के हाशिये पर पड़ी पतिता के बीच की खाई मिट जायेगी। रूमानी प्रेम के विपरीत इयत्ता आधारित प्रेम यौन संबंधों के मामले में अनिवार्यतः एकनिष्ठता पर नहीं चलता।
>
> एंथनी गिडेंसः *ट्रांस्फ़ॉर्मेशन ऑफ़ दि इंटीमेसी*

मीडिया एक नया कामसूत्र लिख रहा है। इस नये कामसूत्र के ज़रिये औरत और मर्द एक-दूसरे की सेक्शुऑलिटी समझने की कोशिश कर रहे हैं। 'हेलो दिल्ली' के एक ही अंक में छपे इन सवालों और जवाबों से एक अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि नई सेक्शुऑलिटी की चिंताएँ और जिज्ञासाएँ कैसी हैंः

> दिल्ली की सुजाता लिखती हैंः मैं एक सुंदर और पढ़ी-लिखी लड़की हूँ। मेरी समस्या यह है कि मैं जिस लड़के से प्यार करती हूँ वह मुझसे अब दूर-दूर भागने लगा है। शुरू में तो वह मेरे पीछे पागल था लेकिन जब से हम दोनों के बीच शारीरिक संबंध बने हैं, तभी से वह मुझसे बात करने से क़तराने लगा है। मुझे समझ में नहीं आता कि क्या करूँ?
>
> दिल्ली के सचिन लिखते हैंः मैं 25 वर्षीय युवक हूँ। अभी छह महीने पहले ही मेरे भाई की शादी हुई थी। एक दिन मैं और मेरी भाभी घर में अकेले थे। अचानक मेरी भाभी मेरे बिस्तर पर आ कर लेट गयीं और हम दोनों मर्यादा की सभी सीमाएँ लाँघ गये। मेरी भाभी मेरी हमउम्र है। यह सिलसिला चार महीने तक चलता रहा। अब मुझसे मुँह चुराने लगी है, जो मुझे बहुत बुरा लगता है। कई बार दिल करता है कि सारी बात घरवालों को बता दूँ, लेकिन भाभी की बदनामी की डर से चुप हो जाता हूँ। कृपया आप ही बताएँ मैं क्या करूँ?
>
> फ़रीदाबाद के धर्मवीर लिखते हैं : मेरी शादी को लगभग दो साल हो गये हैं, लेकिन मुझे इस बात का दुःख है कि मैं अभी तक अपनी बीवी के साथ शारीरिक संबंध नहीं बना पाया हूँ। इसका कारण सेक्स अंग में तनाव की कमी है। जब मैं चाहता हूँ, तब तनाव नहीं आ पाता और जब नहीं चाहता तब रहता है। इस वजह से मेरी पत्नी बहुत परेशान है। कृपया उपाय बतायें।

कामसूत्र सेक्स सर्वे के लिहाज़ से देखा जाये तो सुजाता और सचिन शादी से पहले यौनक्रिया करने वाले दिल्ली के उन लोगों की श्रेणी में आते हैं जिनका प्रतिशत तक़रीबन 52 है। सुजाता और सचिन को अपने सेक्स ऐक्ट की नाकामी की शिकायत नहीं है। लेकिन, प्रश्न से ज़ाहिर है कि सुजाता की यौनक्रिया एक बार होकर रुक जाती है, पर सचिन और उसकी भाभी का संबंध चलता रहता है। यानी सुजाता की यौनक्रिया की सफलता संदिग्ध है। सर्वे का आँकड़ा सिर्फ़ सनसनी फैलाकर और यौन क्रांति का दावा करके रह जाता है, पर वह ज़ाहिर नहीं करता कि विवाह की संस्था से बाहर सफल या असफल यौनक्रिया करने पर कितने तरह के जज़्बाती उफानों का सामना करना पड़ सकता है। सुजाता और सचिन यौनक्रिया के बाद और उसके कारण संबंधों में आये तनाव से परेशान हैं। दूसरी तरफ़ धर्मवीर यौनक्रिया में नाकाम रहने के कारण पत्नी के साथ संबंधों में आ रहे तनाव से

चिंतित हैं। उनके प्रश्न से लगता है कि पत्नी की शिकायत ज़्यादा मुखर हो जाने पर ही उन्होंने मनोचिकित्सक अशोक जैनर को चिट्ठी लिखी होगी। बहरहाल, यौनक्रिया तीनों स्थितियों में संबंधों को परिभाषित करने का ज़रिया बनती दिखायी देती है। सुजाता के प्रश्न को भारतीय युवाओं के नये सेक्शुअल रुझानों की एक झलक लेने के नज़रिये से भी पढ़ा जा सकता है। वह कहती है कि दैहिक संबंध बनने के बाद से ही उसका प्रेमी उससे दूर भागने लगा। प्रेमी का यह रवैया उसके दिमाग़ में आ सकने वाले संभावित ख़यालों की तरफ़ इशारा करता है। दस-पंद्रह साल पहले सम्भोग के लिए सुजाता की तत्परता उसके प्रेमी की निगाह में उसे गिरा सकती थी। ऐसी हालत में उसे यौनक्रिया दोहराने में कोई दिक़्क़त नहीं होनी चाहिए थी। वह सुजाता के साथ कई बार यौनक्रिया करने के बाद भी उसके साथ संबंध तोड़ सकता था। इससे लगता है कि अगर कोई संबंध 'ग्रेट सेक्स' उपलब्ध नहीं करा सकता तो आज के भारतीय युवाओं के लिए उसका भविष्य संदिग्ध हो सकता है।

मीडिया सेक्शुॲलिटी को और भी कई कोणों से खुली बहस में ले आया है। वह सेक्शुअल लोकतंत्र, सेक्शुअल नागरिकता, सेक्शुअल पहचान और सेक्शुअल समुदाय की अवधारणाओं का इस्तेमाल न करते हुए भी उनकी व्यावहारिक निर्मितियों की तरफ़ इशारा करता है। मसलन, वह साफ़ इशारा करता है कि जिन सेक्शुअल मामलात को निबटा हुआ माना जाता था, वे सवाल आज फिर से पुनर्विचार के दौर से गुजर रहे हैं। बजाय इसके कि वह नयी पीढ़ी को पुरानी पीढ़ी के सेक्शुअल मूल्यों की शिक्षा दे, वह पुरानी पीढ़ी को नयी पीढ़ी के ख़यालों के बारे में बताने को अपने प्राथमिक कर्तव्य के रूप में पेश करता है। पहले सेक्शुॲलिटी के प्रचलित मतलब के केवल तीन पहलू थे: इरोटिक एहसासों के स्रोत के रूप में औरत की देह, पुरुष की शिश्न-केंद्रित चिंताएँ और हेटरोसेक्शुअल दायरा। यह मीडिया आज की सेक्शुॲलिटी को बहुवचन के रूप में पेश करता है। उसकी सामग्री जिस अंदाज़ में सामने आती है उससे लगता है कि आज पुरुष की देह भी उतने ही केन्द्र में है। मर्दानगी पर हेटरोसेक्शुॲलिटी के संदर्भ में बहस हो रही है। 'पुरुष मीनोपॉज़' पर लेख छप रहे हैं। ऐसे शोधों की जानकारी दी जा रही है जो स्त्री के बजाय पुरुष को कमज़ोर जेंडर करार देते हैं। सर्वेक्षणों के ज़रिये साबित करने की कोशिश हो रही है कि आज का पुरुष घर के काम में हाथ बँटाने के लिए ख़ासतौर से उत्सुक है। इसके पीछे पेशकश यह बताने की है कि आज के ज़माने में श्रम का लैंगिक बँटवारा पहले जैसा नहीं रह गया है। बहस हो रही है कि इंडिया फ़ैशन वीक में रोहित बल के पुरुष मॉडलों ने अपनी माँग में सिंदूर क्यों भरा?

वैकल्पिक यौनिकताओं के संदर्भ में इस मीडिया ने हिजड़ों पर ख़ासतौर से ध्यान दिया है। दिल्ली में हिजड़ों की गिरोहबंदी, उनके देह व्यापार, हिंसा और अपराध की संरचनाओं के साथ उनके अंतर्संबंधों पर मीडिया में काफ़ी सामग्री छपती है। व्यापार और विज्ञापन की दुनिया में चल रहे विमर्श के ज़रिये वह दिखाता है कि नये उपभोक्ता समाज में ब्रांडों का व्यापार अब पहले की भाँति स्त्री लिंग और पुल्लिंग के अलग-अलग ख़ानों में क़ैद नहीं रह गया है। स्त्रियों को वह सामान बेचा जा रहा है जो पुरुषों के लिए बनाया जाता रहा है और पुरुषों को स्त्रियों के लिए तैयार किया गया माल पसंद आने लगा है। इसे मीडिया में 'जेंडर-बेंडर' कहा जाता है। उपभोक्ता क्रांति का यह पूरा माहौल हमें सेक्शुॲलिटी को नयी रोशनी में देखने पर मजबूर करता है। हम देखते हैं कि परिवार द्वारा निर्धारित स्त्री-पुरुष की अलग-अलग भूमिकाएँ और वजूद परस्पर व्यापी होते जा रहे है, पर 'विमेन ऑन टॉप' की अवधारणा ऐसे नये आसनों को प्राथमिकता सूची में ऊपर बढ़ा रही है जिनमें औरत मर्द के नीचे दबे होने या उसके एहसास की शिकार नहीं रह जाती।

सेक्शुॲलिटी की अभिव्यक्तियों के इन विभिन्न आयामों की सबसे बड़ी विशेषता है सेक्स ऐक्ट से पहले की परिस्थितियों के बारे में उभर रहा विमर्श। यह विमर्श उन क्षणों के बारे में है जब प्रेम संबंध की शुरुआत होती है। अख़बारों के कॉलम इस तरह की सामग्री से भरे पड़े हैं। 'डेल्ही टाइम्स' के कॉलमों में पत्नियों और प्रेमिकाओं के लिये राय-मशविरे के लम्बे-लम्बे मैनुअल हर हफ़्ते छपते हैं। बात आसानी से समझ में आ जाये, इस मक़सद से उसे ऑब्जेक्टिव टेस्ट की शैली में लोकप्रिय ढंग से छापा जाता है। इन मैनुअल्स को तैयार करने में इस्तेमाल की गयी होशियारी के कारण आसानी से पता नहीं चलता कि दरअसल ये परिवार और सेक्शुॲलिटी की पहले से स्थापित संरचनाओं को बदलने के मक़सद से छापे गये हैं। इनके अलावा सलाह-मशविरे की शैली में जो फ़ीचर नियमित रूप से छपते हैं उनमें भले ही विवाह की संस्था और एकनिष्ठ संबंधों की अनिवार्यता का

उल्लघंन करने की राय न दी जाती हो, पर उनमें यह संदेश साफ़ होता है कि अगर शादी परस्पर संतोषजनक ढंग से नहीं चल पा रही है, तो बेहतर होगा कि उसे ख़त्म कर दिया जाये। विवाहेतर संबंधों का विरोध करते हुए भी ये फ़ीचर बिना संकोच कहते हैं कि जब तक किसी के साथ रहो, वफ़ादारी के साथ रहो, लेकिन अगर संबंधों में खटास आ जाये तो उसे तोड़ने में ज़्यादा हीला-हवाला करना भी उचित नहीं है और, ज़रूरी नहीं कि दोबारा शादी के चक्कर में फँसा जाये। अकेले जीवन गुजारना भी श्रेयस्कर और सुखकर हो सकता है। मसलन, एक मैनुअल पत्नियों को समझाता है कि अपने पति को भावनात्मक रूप से आकर्षित बनाये रखने के लिए उन्हें क्या करना चाहिए। दिलचस्प बात यह है कि इस मैनुअल में पत्नी से अपेक्षा की गयी है कि उसे पति को लगातार 'नोटिस' पर रखना चाहिए। यानी पति को यह एहसास रहे कि पत्नी कभी भी उसे 'आश्चर्यचकित' कर सकती है। अगर पति उसे समझने की कोशिश नहीं करेगा तो वह नये संबंध के बारे में सोच सकती है। यह अंदेशा पति को एक ख़ास तरह की अस्थिरता का शिकार बनाये रखेगा और वह पत्नी को घर की मुर्ग़ी नहीं समझेगा। विवाह से पहले की जाने वाली दोस्ती और डेटिंग के बारे में भी युवा वर्ग का विचार साफ़तौर से उभर कर आता है कि आज के ज़माने में वे शादी करने के मक़सद से दोस्ती की शुरुआत नहीं करते। जहाँ तक 'अंतर्मन' के डॉक्टर अशोक जैनर का सवाल है, वे सम्भोग के ज़रिये हासिल 'ऑर्गेज़्म' को 'लिटिल डैथ' समझने के पुराने मनोचिकित्सकीय फंडे में फँसे हुए हैं।

हर बुधवार को 'डेल्ही टाइम्स' के कॉलम डेटिंग के विज्ञापनों से भरे होते हैं। हर विज्ञापन कभी छिपे और कभी खुले संबंधों में यौन संबंधों के लिए निमंत्रण की तरह होता है। इनकी कुछ मिसालों से अंदाज़ा लग सकता है कि किस तरह मित्रता, यौन संसर्ग, देह व्यापार और डेटिंग आपस में गड्डमड्ड हो कर विशुद्ध सेक्शुऑलिटी में बदल गये हैं:

> गोपनीयता की गारंटी है। मैं साहिल, 24 साल का, गोरा, ख़ूबसूरत, पाँच फ़ुट दस इंच लंबा, एक कंपनी में अधिकारी हूँ। किसी भी जवान लड़की या अमीर महिला कुछ दिनों का रोमांस करना चाहे तो मैं तैयार हूँ। कोई झमेला नहीं चाहिए।
>
> विनोद, 40 साल, दिल्ली, शादीशुदा पर डिस्सेटिस्फ़ाइड, किसी भी उम्र की महिला के साथ सच्ची और टिकाऊ दोस्ती के लिए तैयार।
>
> लवबग4यू का संदेश: कॉस्मेटिक, आर्टिकुलेट और वैरी प्रेटी। और मॉडेस्टी तो मुझे छू नहीं गयी। लो, मैं हूँ तुम्हारे लिये। कैन यू हैंडिल मी। अगर हाँ, तो इस पते पर मुझे ईमेल करो।
>
> बिज़नेसमैन, चालीस साल, पाँच फ़ुट चार इंच, दोस्त की तलाश पार्टियों में जाने के लिए। केवल दिल्ली की महिलाएँ ही संपर्क करें। फ़ोन नंबर दें और फ़ोन करने के वक़्त का भी उल्लेख करें।
>
> आई एम बिग बूज़्म्ड, 38, सेक्सी, लाइक टु बी पैंपर्ड, आई केन बी यौर एम्प्रेस, इफ़ यू वांट टु बी माई एम्परर, कॉंटेक्ट मी। मेल 45 टु 55 आर प्रेफ़र्ड।
>
> लुकिंग फॉर क्वालिटीज़ ऑफ़ ए गॉडफ़ादर केयरिंग, लविंग, प्रोटेक्टिव। आई एम 38 सिंगल, प्रेटी ऐण्ड वेरी पैंपर्ड। इफ़ यू आर ए किंग विद दि क्वालिटीज़ ऑफ़ ए गॉड फ़ादर हू केन पैंपर मी ऐण्ड ट्रीट मी लाइक ए क्वीन। मेल मी ऐट –
> buxom_queen38@indiatimes.com

डेटिंग के इन विज्ञापनों में सम्पर्क के लिये हमेशा ईमेल का पता दिया जाता है। ज़ाहिर है कि इंटरनेट न होता तो इस तरह की डेटिंग भी संभव न होती जो परिवार, उम्र, समुदाय और संस्कृति की सीमा के पास जा सकती हो। ये सारे विज्ञापन सेक्शुअल एडवेंचर की संभावनाओं से धड़क रहे हैं। कुछ विज्ञापन ख़ास तरह की आमंत्रण से भरी सेक्सी भाषा (जैसे: आई एम ए शुगरी बेबी या फिर कॉल फ़्रॉम ए स्वीटी-ट्वीनी या मैसेज फ़्रॉम ए लिटिल मरमेड) अपनाते हैं जिससे लगता है कि उनके पीछे देह व्यापार के रैकेट काम कर रहे होंगे। स्त्रियों की तरफ़ से

दिये गए डेटिंग के ये विज्ञापन साफ़ कहते हैं कि वे अपने पुरुष पार्टनर के साथ हफ़्ते-दस दिन के लिए गोवा की यात्रा करने को तैयार हैं और अगर वह चाहे तो उन्हें पहाड़ों की सैर करने में भी कोई गुरेज़ नहीं है। यह भी देह व्यापार के नये रूपों की तरफ़ इशारा करता है। ये रूप देह व्यापार को केवल यौनक्रिया तक ही सीमित नहीं रखते। ये 'वन नाइट स्टैंड' से आगे जाते हैं और कई दिन साथ-साथ रहने और घूमने-फिरने से बनने वाली परिस्थितियों में प्रेम की नौबत तक ले जाने वाली अंतरंगता की संभावनाएँ जगाते हैं। ज़ाहिर है कि यह 'प्रेटी वूमेन' वाला नज़ारा है। पर इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि इसमें टिकाऊ अंतरंगता की संभावनाएँ क्षीण ही रहेंगी क्योंकि इस संबंध की अवधि पहले से ही परस्पर सहमति के आधार पर व्यावसायिक नज़रिये से काट-छाँट कर छोटी कर दी गयी है। इन सीमाओं के बावजूद इस तरह की डेटिंग में मर्द की सेक्शुऑलिटी के लिहाज़ से एक नयी परिघटना की संभावना भी पढ़ी जा सकती है। पुरुष को यौनक्रिया में ज़बरदस्त एकाग्रता की ज़रूरत पड़ती है, वरना वह जिस तेज़ी से उत्तेजित होता है, उतनी ही तेज़ी से वह अपने यौनांग की उत्तेजना पल भर में खो भी देता है। किसी एक स्त्री के साथ परस्पर व्यावसायिक सहमति के आधार पर ही सही, एक दिन से ज़्यादा लगातार कई दिन तक तनाव मुक्त सफल सहवास अपेक्षाकृत स्थायी क़िस्म की अंतरंगता की तरफ़ ले जा सकता है।

बहरहाल, देह व्यापार का एक और नया पहलू फ़्रेंडशिप क्लबों की नवविकसित परिघटना में पाया जा सकता है। राष्ट्रीय अख़बारों के वर्गीकृत विज्ञापनों के कॉलमों में ऐसे फ़ोन नम्बर इफ़रात से मिलते हैं जिन पर कॉल करके एक निश्चित फ़ीस दे कर महिला फ़्रेंड पायी जा सकती है। यह दोस्ती भी डेटिंग की तरह दस या पंद्रह दिन चलने के लिए ही की जाती है। इसमें साथ-साथ घूमा जाता है, वाइनिंग-डाइनिंग होती है, फ़िल्म देखी जाती है, उपहार दिये जाते हैं और यह सिलसिला जितनी खूबी और खुले दिल से होता है उसी के अनुपात में सेक्स का सुख भी उठाया जा सकता है। यह धंधा क़ानून की पकड़ से एकदम बाहर है। दिल्ली के सबसे मशहूर मैरिज ब्यूरो ('रिश्ते ही रिश्तेः मिल तो लें' का विख्यात नारा देने वाला) के संचालक द्वारा चलाये जा रहे फ़्रेंडशिप क्लब पर पुलिस ने जब छापा मारा तो कई कम्प्यूटरों में भरे हुए बहुत से फ़ोन नम्बर मिले। ये फ़्रेंडशिप चाहने और देने वालियों के थे। संचालक महोदय ने पुलिस को चुनौती दे कर कहा कि वे कोई ग़ैरकानूनी काम नहीं कर रहे। यानी उन पर दलाली का इल्ज़ाम नहीं बनता था। वे तो एक पक्ष को दूसरे पक्ष के केवल फ़ोन नम्बर देते हैं। बाकी काम करना दोनों पार्टियों की ज़हमत है। फ़्रेंडशिप कराने वाले क्लबों में सबसे मशहूर और व्यावसायिक कुशलता से काम करने वाली संस्था शायद टाइम्स फ़्रेंडशिप नेटवर्क लिमिटेड है। 1997 से पब्लिक लिमिटेड कंपनी के रूप में काम कर रही यह संस्था दावा करती है कि उसके पास जोशोख़रोश से काम करने वाली एक टीम है और आधुनिकतम प्रौद्योगिकी के साथ सबसे बड़ा नेटवर्क है। वह दोस्ती बेचने के बाद हफ़्ते में सात दिन और चौबीस घंटे आफ़्टर सेल सर्विस भी देती है। यह कंपनी अपने विज्ञापन में आश्वासन देती है :

फ़्रेंडशिप श्योर, सेफ़ ऐण्ड सिक्योर! दो लाख का मुफ़्त इंश्योरेंस! फ़्रेंडशिप की गारंटी वरना पैसे वापस।
टाइम्स फ़्रेंडशिप वालों को अगर फ़ोन किया जाये तो वे उम्र, पेशा, आमदनी और रुचियों आदि का पता लगा कर सलाह भी देते हैं कि आप को कैसी फ़्रेंडशिप 'सूट' करेगी। उसी के हिसाब से फ़ीस होती है। आम तौर पर तीन स्तरों की फ़्रेंडशिप की पेशकश करने वाली यह कंपनी साफ़ बताती है कि नीचे से दो स्तरों पर तो पुरुष को ही फ़्रेंड के ऊपर ख़र्चा करना होगा, पर सर्वोच्च स्तर की फ़्रेंडशिप में हो सकता है कि महिला पक्ष ही ख़र्च करने के लिए राज़ी हो जाये। या दोनों एक-दूसरे पर ख़र्च करें। पहले दोनों स्तरों पर महिला पक्ष के पास चुनाव का अधिकार नहीं होता। पर, सर्वोच्च स्तर पर महिला पक्ष भी पुरुष को ठुकरा सकता है। न तो यह चकलाघर वाला देह व्यापार है और न ही कॉलगर्ल वाला जिसमें सम्भोग के अलावा और कुछ नहीं होता। देह व्यापार की यह अजीब-सी संरचना है जिसमें पैसे के बदले किये जाने वाले सम्भोग को मित्रता और रोमांस से गूँथ दिया गया है। ज़ाहिर है कि इस घालमेल में नये तरह के अंतरंग रिश्ते बनने की काफ़ी संभावनाएँ हैं जो विवाह और परिवार के दायरों के बाहर सक्रिय रह सकते हैं। डेटिंग के विज्ञापन और फ़्रेंडशिप क्लब उत्तरोत्तर लोकप्रिय होते चले जा रहे हैं। इन विज्ञापनों में मँझोली आय वाले लोगों के लिए भी सेक्शुअल एडवेंचर की संभावनाएँ हैं।

जॉन डि'इमिलियो द्वारा की गयी पूँजीवाद और समलैंगिकता के रिश्तों की व्याख्या को अगर एंथनी गिडेंस द्वारा प्रतिपादित प्रेम की तीन श्रेणियों के साथ पढ़ा जाये तो समझ में आने लगता है कि दिल्ली का मीडिया डेटिंग कॉलमों और फ्रेंडशिप क्लबों के ज़रिये किस तरह के प्रेम की संस्तुति कर रहा है। आधुनिक समाजों में सेक्शुॲलिटी, प्रेम और ऐंद्रिकता की चर्चा करते हुए एंथनी गिडेंस ने प्रेम की तीन श्रेणियाँ बनायी हैं। रूमानी प्रेम, उत्कट प्रेम और इयत्ता केन्द्रित प्रेम। ये तीनों ही रूप आधुनिकता की देन हैं और पूँजीवादी विकास में तरह-तरह की भूमिकाएँ निभाते दिख सकते हैं।

रूमानी प्रेम आज़ादी की कामना से जुड़ा हुआ है और वह सेक्शुॲलिटी को गले लगाने के बावजूद उसे पहली प्राथमिकता पर नहीं रखता। यहाँ पूँजी अपने प्रभुत्व के शुरुआती दौर में उत्पादक शक्तियों के विकास का नियामक होते हुए भी प्रेम को डराती है। यहाँ प्रेम ऐलान करके कहता है कि वह स्थापित संरचनाओं द्वारा आरोपित रिश्तों को मान्यता नहीं देता। लव में दोनों पार्टनर एक-दूसरे को स्पेशल समझते हैं और यह स्पेशलिटी उसी समय स्थापित हो जाती है जब पहली बार नज़रें चार होती हैं। दोनों एक-दूसरे के सामने अपना हृदय खोलते चले जाते हैं। दोनों ही इयत्ताएँ मिल कर एक हो जाती हैं। रूमानी प्रेम की यह घटना अपने प्रारंभ और परिणाम में अलग-अलग संस्कृतियों में अलग-अलग ढंग से घटती है। प्रेम की इस संस्कृति-विशिष्ट क़िस्म का तीव्र और सार्वभौम रूप उत्कट प्रेम है जिसमें दैहिक आकर्षण और सेक्शुॲलिटी इतनी प्रखर होती है कि प्रेमी युगल का परिवेश अस्थिर हो जाता है। इस प्रेम में राजसिंहासन त्याग दिये जाते हैं, वर्ग और जाति की सीमाएँ तोड़ दी जाती हैं और एक-दूसरे को पाने के लिए रेडिकल तरीक़े अख़्तियार करने में भी कोई हिचक नहीं दिखायी जाती। रूमानी प्रेम में भी व्यवस्था विरोध के तत्त्व होते हैं, पर उत्कट प्रेम व्यवस्था को अपने सामने पूरी तरह झुका देना चाहता है। वह मरने-मारने पर उतारू रहता है। व्यवस्था इन दोनों प्रेमों की अस्थिरकारी प्रवृत्तियों से चौंकती है और ऐलान करती है कि 'इश्क़ चीज़ है बेहद नाज़ुक, अक़्ल का बोझ उठा नहीं सकती'।

पूँजीवादी समाज लगातार एक तीसरी तरह के प्रेम की तलाश करता रहता है जिसकी सिफ़ारिश करने में उसे किसी जोखिम का सामना न करना पड़े। यह है इयत्ता आधारित प्रेम। इसमें दोनों पक्ष आगा-पीछा सोच-समझ कर प्रेम में पड़ते हैं। पहली नज़र में किसी का किसी को भा जाना प्रेम की शुरुआत कर सकता है, इससे मन में प्रेम का विचार पैदा हो सकता है, लेकिन बुद्धिसंगत कसौटियों पर कसने से यह आकर्षण मस्तिष्क द्वारा ख़ारिज भी कर दिया जाता है। इस प्रेम में प्रेमीजन अपने परिवेश को कोई चुनौती नहीं देना चाहते। वे भविष्य, सामाजिक हैसियत, आर्थिक हैसियत और अपनी इयत्ता की पूरी रक्षा का बंदोबस्त करके प्रेम के मैदान में उतरते हैं। यहाँ प्रेम विवाह 'स्वनियोजित विवाह' में बदल जाता है जिसमें दोनों पक्षों के परिजन भागीदारी करते हैं।

ख़ास बात यह है कि इस प्रेम में दोनों पक्ष अपनी इयत्ता एक-दूसरे के सामने उतनी ही प्रकट करते हैं जितनी संबंधों के जारी रहने के लिए ज़रूरी होती है। दोनों किसी न किसी रूप में अपनी प्राइवेसी सुरक्षित रखने का निर्णय ले सकते हैं। चूँकि मामला इयत्ता का है, इसलिए सेक्शुअल रुझान पहली प्राथमिकता बन जाता है जिससे प्रेम दो तरह की गिरफ़्तों से आज़ाद हो पाता है। सबसे पहले वह शाश्वत प्रेम के आग्रह से मुक्त होता है। नतीजे के तौर पर 'मिलन और तलाक़' की परिघटना वाला समाज उभरता है। यौन संबंधों की एकनिष्ठता धारावाहिक किस्म की एकनिष्ठता में बदल जाती है। दूसरे उसे हेटरोसेक्शुॲलिटी की गिरफ़्त से आज़ाद होने का मौक़ा मिल जाता है। यानी इयत्ता आधारित प्रेम समलैंगिक प्रेम को भी स्वीकार करता है। पूँजीवाद को यही प्रेम पसंद है और इसकी पेशकश भूमंडलीकरण के युग में अनायास ही नहीं की जा रही है।

तलाक़ के मामलों के विशेषज्ञ वकीलों के मुताबिक़ दिल्ली में होने वाले प्रत्येक पाँच विवाहों में एक का अंत तलाक़ में होता है। यह पिछले पाँच सालों की स्थिति है। पहले तलाक़ के लिए दी जाने वाली अर्ज़ियों में तीस फ़ीसदी महिलाओं की तरफ़ से दी जाती थीं, अब उनकी संख्या बढ़ कर चालीस फ़ीसदी हो गयी है। दिल्ली में पाँच तलाक़ कोर्ट हैं जिनमें प्रतिदिन पच्चीस से तीस मुक़द्दमे दायर होते हैं। यानी हर वर्ष आठ-नौ हजार दम्पति तलाक़ के लिए अदालतों की शरण लेते हैं। यह परिस्थिति बहुत बड़े पैमाने पर ऐसे समुदाय को पैदा कर रही है जिसकी रचना जल्दी ही दूसरी या तीसरी शादी करने वाले लोगों, या फिर अकेले रहने वाले लोगों से ही होगी। लेकिन, केवल इन्हीं आँकड़ों के आधार पर यह नहीं माना जा सकता कि नयी सेक्शुॲलिटी के विकसित

होने की वे भौतिक स्थितियाँ तैयार हो गयी हैं जो युरोप या अमेरिका में हैं। इससे यह अंदाज़ा भी नहीं लगाया जा सकता कि दिल्ली या देश में किसी भी क़िस्म के समलैंगिक समुदायों की रचना हो रही है। शायद इसीलिए दिल्ली में समलैंगिकों के बीच काम करने वालों ने 'गे' या 'लेस्बियन' जैसी पश्चिमी अस्मिताओं के मुक़ाबले एक 'एमएसएम' जैसी श्रेणी ईज़ाद की है। इसका मतलब हुआ 'मैन हू हेज़ सेक्स विद मैन'। दिल्ली के एक बड़े सेक्शुअॅलिटी एनजीओ के सहयोग से दिल्ली के पुरुष समलैंगिकों की एक एथनोग्राफ़ी में यह श्रेणी काफ़ी ठोस रूप से निकल कर आयी है। इस अध्ययन से पता लगता है कि दिल्ली के समलैंगिकों में शादीशुदा और बाल-बच्चों वाले मर्दों की संख्या ख़ासी है। इस तरह बाईसेक्शुअॅलिटी का तथ्य सामने आता है।

तीसरा समीकरण: सेक्शुअल इंजीनियरिंग, सेक्शुअल पॉलिटिक्स और सेक्शुअल इंडेक्स

> जैसे-जैसे उजरती मज़दूरी का प्रसार और उत्पादन का सामाजिकीकरण हुआ, सेक्शुअॅलिटी को प्रजनन की 'अनिवार्यता' से मुक्त करना संभव होता चला गया। विचारधारात्मक रूप से हेटरोसेक्शुअल रिश्तों का मतलब अंतरंगता, परस्पर ख़ुशी और आनंद की अनुभूतियों को बढ़ावा देना समझा जाने लगा। एक तरफ़ परिवार की संस्था को आर्थिक उत्पादन की स्वतंत्र इकाई से वंचित करके और दूसरी तरफ़ सेक्शुअॅलिटी को संतानोत्पत्ति की ज़िम्मेदारी से बरी करके पूँजीवाद ने ऐसे हालात तैयार किये कि कुछ औरतों और मर्दों को अपना निजी जीवन अपनी समलैंगिक ऐंद्रिक और जज़्बाती ज़रूरतों के आसपास व्यवस्थित करने का मौका मिल गया...
>
> जॉन डि'इमिलियो: *कैपिटलिज़्म ऐण्ड दि गे आइडेंटिटी*

> पूरे भारत की गे आबादी का 32 फ़ीसदी हिस्सा राजधानी में है। ऐसे हास्यास्पद आँकड़े पढ़कर लोगों को लगता है कि हम लोग पूरी दिल्ली पर क़ब्ज़ा ही किये ले रहे हैं। कई लोगों ने मुझसे मिलकर कहा है कि 'अरे, तुम लोग तो हर जगह हो और फैलते ही जा रहे हो।' मेरा जवाब था कि हम लोग कोई महामारी नहीं हैं जो फैलती जा रही हो।
>
> 12 जून के *हिन्दुस्तान टाइम्स* में प्रभा चंद्रन के आइटम 'डेल्ही इज़ न्यू कैपिटल ऑफ़ गेज़' की प्रतिक्रिया में 'गे डेल्ही: न्यूज़ ऐण्ड रिव्यूज़' की टिप्पणी।

डि'इमिलियो, डेविड हैलपेरिन और पीटर रे जैसे विद्वान अपने अध्ययनों में अलग-अलग ढंग से दिखाते हैं कि समाज में जैसे ही परिवार की संस्था संकट में फँसती है, समलैंगिकता, आत्मरति और दृश्यरति चुनौतीपूर्ण मुद्रा में उभरते हैं। इन विद्वानों के पास इस सूत्रीकरण को ठोस साबित करने के प्रमाण भी हैं। वे युरोप और अमेरिका में तलाक़ की बढ़ती हुई संख्या ही नहीं, दूसरी और तीसरी शादियों में वृद्धि के आँकड़े भी पेश करते हैं। उनके विमर्श से एक समझ में आने वाला सिद्धांत निकलता है कि पूँजीवाद एक तरफ़ तो सेक्स को दैहिक आनंद से जोड़कर उसे सर्वाधिक प्रामाणिक बना देता है जिससे समलैंगिकता के लिये पहले से कहीं ज़्यादा स्पेस बनने की संभावनाएँ पैदा होती हैं, लेकिन साथ ही वह परिवार की अस्थिरता की झूठी तोहमत भी समलैंगिकता पर मढ़ता है ताकि यह प्रवृत्ति संतानोत्पत्ति की ज़िम्मेदारी निभाने वाले परिवार को पूरी तरह खा न जाये। इस तरह पूँजीवाद होमोसेक्शुअॅलिटी और होमोफ़ोबिया दोनों को एक साथ बढ़ावा देता है।

सेक्शुअॅलिटी पर उपलब्ध पश्चिमी समाज विज्ञान या तो युरोपीय और अमेरिकी अनुभव की इसी समझ पर आधारित है या फिर वह दक्षिण-पूर्व एशिया और प्रशांत महासागरीय देशों में पनपे सेक्स मार्केट के अध्ययन के आधार पर रचा गया है। भारतीय परिस्थितियाँ अभी तक सेक्शुअॅलिटी के अध्येताओं का विषय ही नहीं बनी हैं। यहाँ सेक्शुअॅलिटी के बारे में अगर कुछ है तो सुधीर कक्कड़ की रचनाओं और प्रकाश कोठारी की टीका-टिप्पणियों के रूप में देखा जा सकता है। ये लोग भी सेक्शुअॅलिटी के चिकित्सकीय और वैचारिक आधार की खोजबीन करने में ज़्यादा व्यस्त रहे हैं। भारतीय सेक्शुअॅलिटी के आत्मगत और वस्तुगत पहलुओं के भाष्य के मामले में विद्वानों के एक छोटे से अध्ययन दल ने पिछले दिनों ज़रूर कुछ काम किया है। इन लोगों ने भारतीय मैस्क्युलिनिटी

को अपनी दिलचस्पी का केन्द्र बनाया है। इनके साथ कुछ गैर-सरकारी संस्थाएँ एड्स के प्रश्न को केन्द्र करके अपनी गतिविधियाँ चला रही हैं। ये संस्थाएँ होमोफ़ोबिया के ख़िलाफ़ काम करते हुए समलैंगिकता को एक स्वाभाविक मानवीय यौन रुझान के रूप में पेश करती हैं। समलैंगिकता के भारतीय इतिहास को उकेरने का भी कुछ प्रयास हुआ है। देखा जाये तो दिल्ली में सेक्शुॲलिटी के ऊपर लोकप्रिय बहस की शुरुआत का श्रेय नब्बे के दशक के उत्तरार्ध में हुई दो घटनाओं को जाता है। पहली, आईटीओ स्थित पुलिस मुख्यालय पर समलैंगिकों का प्रदर्शन और दीपा मेहता की फ़िल्म *फ़ायर* के ख़िलाफ़ हिंदुत्व ब्रिगेड के हमले की प्रतिक्रिया में कुछ लेस्बियनों का पहली बार खुलकर सामने आना। लेकिन, इससे पहले ही एड्स भेदभाव विरोधी संगठन की गतिविधियों ने इस बहस की नींव डाल दी थी। अरुण भंडारी, डॉ. जे.पी. जैन, जगदीश भारद्वाज, एस.ए. ललिता, डॉ. पी. एस. साहनी, एस.सी.एन. शालिनी और सिद्धार्थ गौतम ने मिलकर इस संगठन के लिए 1991 में एक रपट तैयार की जिसे *सिटिज़ंस रिपोर्ट ऑन दि स्टेटस ऑफ़ होमोसेक्शुॲलिटी इन इंडिया* क़रार दिया गया। इस रपट का शीर्षक था 'लैस देन गे'। इसके बाद दिल्ली में सेक्शुॲलिटी का मसला सीधे-सीधे या तो मीडिया के हाथों में जाता हुआ दिखायी देता है या फिर उस पर एनजीओ के रूप में प्रचलित संगठन हावी होते हुए दिखते हैं। मीडिया होमासेक्शुॲलिटी के बारे में ख़बरें तो देता है, पर वह अपना कार्यक्षेत्र हेटरोसेक्शुॲलिटी को ही बनाता है। एनजीओ समलैंगिकता के दायरे में काम करते हैं और हेटरोसेक्शुॲलिटी को अनुसंधान के विषय में देखने से भी परहेज़ करते हैं। इस तरह दिल्ली में सेक्शुॲलिटी का विमर्श हेटरो और होमो कम्पार्टमेंट्स में बँट जाता है। दोनों की राजनीति अलग-अलग है। मीडिया बाज़ार की सेवा में लगा हुआ है और एनजीओ एड्स के खिलाफ़ संघर्ष के नाम पर मिल रहे विदेशी धन के दबाव में एक ख़ास तरह के एजेंडे को आगे बढ़ा रहे हैं।

मीडिया भूमंडलीकरण और आधुनिकीकरण के नाम पर जिस यौन क्रांति का नेतृत्व करने का दावा कर रहा है, उसका पहला अधूरापन तो यह है कि वह सेक्शुॲलिटी में निहित बहुवचन को स्वीकारते हुए भी साफ़ तौर पर केवल हेटरोसेक्शुॲलिटी के पक्ष में ही झुका हुआ है। बहस के दौरान उसे हिंदुत्व ब्रिगेड के सिद्धांतकार केवलरत्न मलकानी के मुक़ाबले समलैंगिकता के पुराने पैरोकार अशोक राव कवि का वक्तव्य छापने में कोई दिक़्क़त नहीं होती। पर साप्ताहिक कॉलमों में नियमित रूप से छपने वाले सेक्स संबंधी सलाह-मशविरे में जैसे ही कोई व्यक्ति अपनी समलैंगिक प्रवृत्तियों की जानकारी देता है, मनोचिकित्सक उसे 'होमोसेक्शुअल डिसऑर्डर' का डर दिखाता हुआ नज़र आता है। यह मीडिया समाज में बढ़ती हुई या सामने आती हुई समलैंगिकता के तथ्यों पर ज़ोर देने से परहेज़ करता है। *डेल्ही टाइम्स* द्वारा कामसूत्र सर्वे के दो बार छापे गये नतीज़ों में इस पहलू का तक़रीबन जानबूझ कर जिक्र नहीं किया गया। *डेल्ही टाइम्स* ने केवल हेटरोसेक्शुअल दायरे में हो रही सेक्शुअल गतिविधियों के आँकड़ों में ही दिलचस्पी दिखायी। विचारधारात्मक रूप से समलैंगिकता के खिलाफ़ न होते हुए भी टाइम्स ग्रुप उससे संबंधित तथ्यों की उपेक्षा क्यों करता है? इसके कारणों का केवल क़यास लगाया जा सकता है। समझा जा सकता है कि भारत में समलैंगिक एक समुदाय के रूप में नहीं उभर पाये हैं इसलिए बाज़ार उनकी एक उपभोक्ता समुदाय के रूप में शिनाख़्त करने में नाकाम है। शायद बाज़ारवाद की सेवा में लगे अख़बार समलैंगिकों को उस यौन क्रांति का उल्लेखनीय अंग मानने के लिए तैयार नहीं हो पाते जो उसकी निगाह में तेज़ी से घटित हो रही है। यहाँ तक कि कामत, काज़मी और करकरिया ऐण्ड कंपनी भी समलैंगिकता का ज़िक्र नहीं करते।

मीडिया दिल्ली में नये तैयार हुए होमोसेक्शुअल स्पेस का विवरण तो देता है, पर अपर्याप्त। पुलिस जब समलैंगिकता विरोधी क़ानून धारा 377 लागू करने के लिए छापे मारती है, तो उन घटनाओं और उनके विरोध की रोशनी में वह ज़्यादा से ज़्यादा यह बता पाता है कि नेहरू पार्क, सेंट्रल पार्क और लाल क़िले से लेकर पुरानी दिल्ली रेलवे स्टेशन तक हर शाम छः बजे के बाद पुरुष समलैंगिक सेक्स पार्टनर की तलाश में 'क्रूज़िंग' करते हैं। लेकिन यह मीडिया उन गे पार्टियों, गे शादियों और गे जोड़ों का ब्यौरा देने से संकोच करता है जो पिछले दस सालों से दिल्ली के सेक्शुअल परिदृश्य के मुखर अंग बन चुके हैं। यहाँ एक बार फिर मीडिया की दिलचस्पी अधिकांशतः हेटरोसेक्शुअल दायरे में हो रही सेक्शुअल गतिविधियों तक ही सीमित है। दरअसल, मीडिया होमोसेक्शुॲलिटी की ख़बरों को सनसनी फैलाने के लिए इस्तेमाल करता है जिसकी दो प्रतिक्रियाएँ होती हैं। एक बिम्ब बनता है कि समाज में यौन स्वच्छंदता बहुत बढ़ती जा रही है। दूसरी तरफ़ होमोफ़ोबिया को बढ़ावा

मिलता है क्योंकि मीडिया की ख़बरें जाने-अनजाने समलैंगिक पुरुष को भावशून्य, बच्चों के साथ कुकर्म करने वाले, बीसियों और पचासों पार्टनरों के साथ सेक्स करने वाले व्यक्ति की छवि दे देता है।

दिल्ली के मीडिया द्वारा की जा रही सेक्शुअल इंजीनियरिंग का अध्ययन इस शहर की सेक्शुॲलिटी के इंडेक्स को निर्धारित करने में काफ़ी मददगार हो सकता है। यह इंडेक्स कामनाओं के भौतिक आधार और उनकी संरचना की तरफ़ एक गतिशील इशारा कर सकता है। मीडिया में दिल्ली के ऐसे तमाम बाज़ारों का नियमित वर्णन मिलता है जहाँ ताज़ा फैशन के मुताबिक़ वस्त्र बहुत सस्ते दामों में मिलते हैं। फ़िल्मों में रानी मुखर्जी और करीना कपूर जैसी फ़िल्मी हीरोइनों द्वारा पहनी गयी पोशाकें, बाँधी गयी बेल्टें और तमाम तरह के पश्चिमी परिधान इस फ़ैशन मार्केट ने निम्न और निम्न-मध्यवर्ग को मुहैया कराना शुरू कर दिया है। दस साल पहले इस तरह के बाज़ारों की उपलब्धता न के बराबर थी। आज उच्च वर्ग द्वारा अपनायी जाने वाली स्टाइल हफ़्ते भर के अंतराल में प्रतिकृति के रूप में इन बाज़ारों में मिल जाती है। रुपहले पर्दे पर नायक-नायिकाओं की इरोटिक छवि को परोसने वाले वस्त्र शहरी समाज में दायें से बायें तक बहुत जल्दी आम लोगों की इरोटिक इयत्ता को व्यक्त करने के माध्यम बन जाते हैं। मीडिया रिश्तों में देह की बढ़ती हुई प्रधानता की जानकारी देता है। आख़िरकार नयी सेक्शुॲलिटी देह के बदलते हुए और विविध होते हुए इस्तेमाल का भी तो नाम है। मीडिया परिवार की मौजूदा दशा की शुरुआती जानकारी देता है। संकेत मिलता है कि हेटरोसेक्शुअल परिवार की संस्था संकट में फँसने की तरफ़ बढ़ रही है। मीडिया बताता है कि तलाक़ की दर बढ़ रही है। उसके वैवाहिक विज्ञापनों वाले कॉलमों में तलाक़शुदा औरतें और विधवाएँ वरों की माँग कर रही हैं। मोनोगेमी सीरियल मोनोगेमी की तरफ़ बढ़ती दिखायी देती है। मीडिया विवाह की बढ़ती हुई उम्र, अकेली रहने वाली औरतों और मर्दों की बढ़ती हुई संख्या की तरफ़ ध्यान खींचता है। केवल पढ़े-लिखे साधनसम्पन्न लोग ही नहीं, दिल्ली के अनौपचारिक क्षेत्र में काम कर रहे लाखों मज़दूर भी अकेले ही जीवनयापन कर रहे हैं, जिनमें तक़रीबन आठ लाख तो रिक्शेवाले ही हैं।

मीडिया पोर्नोग्राफ़ी और इरोटिक सामग्री के सामाजिक असर पर नियमित रूप से बहसें और अन्य सामग्री प्रकाशित करता रहता है। फ़्रेंडशिप क्लबों, फ़ोन सेक्स, मसाज पार्लरों और एस्कॉर्ट सर्विसों के विज्ञापन छाप कर वह देह व्यापार के नये-नये रूपों और उसके अभूतपूर्व प्रसार का वाहक बना हुआ है। वह सेक्शुॲलिटी पर एड्स जैसे महारोग के असर से ख़ासा चिंतित है। एड्स का आतंक हेटरो और होमो दोनों क्षेत्रों में है। सेक्शुॲलिटी से जुड़े तक़रीबन सभी एनजीओ एड्स का मुक़ाबला करने के नाम पर पश्चिम से बड़े पैमाने पर धन ला रहे हैं। विदेशी धन के प्रायोजित आग्रहों से बहुत बड़े पैमाने पर सेक्शुॲलिटी के डिस्कोर्स को एक ख़ास दिशा दी जा रही है। विदेशी पैसे ने एक ख़ास तरह की 'पॉलिटिकल करेक्टनेस' पैदा की है। जिस तरह संसदीय राजनीति में अल्पसंख्यकों की राजनीति होती है, ठीक उसी तर्ज़ पर ऑल्टरनेटिव सेक्शुॲलिटी की राजनीति हो रही है।

उपभोक्ता क्रांति और मनोरंजन उद्योग के साथ जुगलबंदी करता हुआ मीडिया नियोजित विधि से हेटरोसेक्शुॲलिटी की शिनाख़्त बाज़ार के टारगेट के रूप में कर रहा है। मीडिया के ज़रिये दिल्ली में रोज़-ब-रोज़ हेटरोसेक्शुॲलिटी का समारोह मनाया जा रहा है। सर्वेक्षण आधारित समाजशास्त्र और महामारियों से जुड़े हुए अंतर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य तंत्र के उपादानों का इस्तेमाल करते हुए अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय पूँजी ने दिल्ली को कामनाओं की फ़ैक्ट्री में बदल दिया है, एक ऐसी फ़ैक्ट्री में जिसमें कामनाएँ संतृप्त होने के बजाय दूसरी कामनाओं को रचने की कामना से ग्रस्त हैं। दिल्ली की जमीन पर सेक्शुॲलिटी पूँजी की सतत तरलता, अपकेन्द्रीयता और गतिशीलता का उत्तर-आधुनिक मॉडल बन गयी है।

मीडिया द्वारा प्रायोजित हेटरोसेक्शुअल सेक्स क्रांति बताती है कि दिल्ली के समाज में विभिन्न लैंगिक अभिनेताओं के बीच यौन क्रिया के लिए रोज़ाना होने वाली अन्योन्यक्रिया बारम्बारता के लिहाज़ से पहले के मुक़ाबले बहुत बढ़ गयी है। यौन क्रिया की स्थानिकता भी अब शयन कक्ष या चकलाघर केन्द्रित नहीं है। शहर के तक़रीबन सभी स्पेस इरोटिक अनुभूतियों से दो-चार हो रहे हैं। लेकिन, मीडिया इस वार्ता के ज़रिये स्थापित होने वाले लैंगिक सत्ता संबंधों के बारे में जानकारी देने से परहेज़ करता है। इस मामले में उसकी मान्यता भी बाज़ार की तरह ही लैंगिक तटस्थता के पक्ष में झुकी हुई लगती है। ज़ाहिर है कि इस तरह की यौन क्रांति में पहले से हावी मर्दानगी के सेक्शुअल मूल्यों को ही अपनी स्थिति मज़बूत करने का मौक़ा मिलता है। लेकिन, क्या

शहरी यौनिकता से संबंधित इस परिवर्तन के दौरान स्त्रीत्व के लिए उसकी अपनी सेक्शुअल एजेंसी पहले के मुक़ाबले सुलभ नहीं हुई है? इस सवाल का जवाब नकारात्मक नहीं दिया जा सकता। मीडिया ने जो छवियाँ परोसी हैं, मर्दानगी पर जिस तरह की बहसों को बढ़ावा दिया है, देह-केन्द्रीयता का जिस तरह से बोलबाला हुआ है और स्त्री पक्ष के लिए इरोटिक एहसासों का जो नवीकरण हुआ है, वह निश्चित रूप से औरत के यौन जीवन में भारी परिवर्तनों का वाहक बन सकता है। इन परिवर्तनों में लैंगिक सत्ता संबंधों को दूरगामी तौर पर प्रभावित करने की क्षमता है। ये परिवर्तन यौन सम्मान के लिए होने वाली अन्योन्यक्रिया के चरित्र को आज नहीं तो कल ज़रूर बदल सकते हैं जिससे परिवार की संरचना पर रेडिकल असर पड़ सकता है।

आभार

मैं आशीष नंदी, धीरूभाई शेठ, रवि सुंदरम, रविकांत, आदित्य निगम, निवेदिता मेनन, ऐश्ली टेलिस, अविनाश झा, श्वेता शारदा, राहुल राय, अनुजा गुप्ता, नवीन चंद्र, शैल मायाराम, आर. के. श्रीवास्तव, अरविंद जैन और राजेन्द्र यादव का शुक्रगुज़ार हूँ जिन्होंने इस अनुसंधान में सामग्री जुटाने से लेकर सोचने-समझने के स्तर तक मेरी मदद की। लेख की सीमाओं की पूरी ज़िम्मेदारी सिर्फ़ मेरी है। इस अध्ययन की अधिकतर सामग्री 1990 से अब तक *इंडियन एक्सप्रेस* और उसके रविवारीय परिशिष्ट, *टाइम्स ऑफ़ इंडिया* और उसके महानगरीय परिशिष्ट *डेल्ही टाइम्स, हिन्दुस्तान टाइम्स* और उसके महानगरीय परिशिष्ट *एचटी सिटी, पायनियर* और उसके महानगरीय परिशिष्ट *वीवासिटी, नवभारत टाइम्स* और उसके महानगरीय परिशिष्ट *हैलो दिल्ली, दैनिक हिन्दुस्तान* और उसके महानगरीय परिशिष्ट *हिन्दुस्तान सिटी* और *एशियन एज* के महानगरीय परिशिष्ट *द डेल्ही एज* में छपी ख़बरों, बहसों और विश्लेषणों से ली गयी है। इसके अलावा कई नेट पर उपलब्ध सामग्री की मदद भी ली गयी है जिसमें गे डेल्ही.डॉट कॉम प्रमुख है।

टिप्पणियाँ

1. डॉ मोजो दिल्ली टाइम्स के पन्नों पर पढ़े और लव-गुरू एफ़एम चैनल रेडियो सिटी पर सुने जा सकते हैं. लेकिन, इससे भी आगे बढ़ कर इस आलेख में ये दोनों नाम प्रतीकात्मक रूप से इस्तेमाल किये गये हैं. दूसरे अख़बारों में दूसरे नामों से और दूसरे एफ़एम चैनलों पर किसी और आवाज़ में यौन विषयक सलाह-मशविरे की ये सेवाएँ दिन-रात खुलेआम क़ानून के दायरे में उपलब्ध हैं. ख़ास बात यह है कि यह दिल्ली के अपने मीडिया की ही परिघटना है. अख़बारों के मुख्य हिस्से से ये बातें अलग रखी जाती हैं, और न ही आकाशवाणी तक इनकी संक्रामकता फैली है.
2. काम विज्ञान में वात्स्यायन के इस विशिष्ट योगदान और उसके कारण उन्हें होने वाली परेशानियों की झलक उनके जीवन पर सुधीर कक्कड़ द्वारा रचित जीवनीपरक उपन्यास *एस्केटिक ऑफ़ डिज़ाइय* से मिलती है. हिंदी में राजकमल द्वारा प्रकाशित इसका अनुवाद *कामयोगी* अपने बेहतरीन अनुवाद के लिए पुरस्कृत हो चुका है.
3. यहाँ वामपंथी महिला संगठन की जिस बैठक का ज़िक्र किया गया है उसमें एकमात्र पुरुष के रूप में यह लेखक भी शामिल था. मैंने जैसे ही यह सवाल उनके बीच में फेंका कि अगर कोई वेश्या सेक्स-वर्कर के उत्तर-आधुनिक अवतार में उनके बीच आ कर उनके संगठन की सदस्यता का दावा करे, तो क्या वे उसे सदस्य बनायेंगी, बहस ने एकदम रेडिकल मोड़ ले लिया. भाषा और शब्दावली पूरी तरह नैतिकता का तख़्तापलट वाली हो गयी। मुझे यह देख कर अचरज हुआ कि पचास से ऊपर की उम्र वाली महिलाओं से लेकर नयी उम्र की लड़कियों तक में स्त्री की कामेच्छा को लेकर सकारात्मक रुख़ प्रकट हो रहा था. मेरे ख़याल से वामपंथी महिला संगठनों में इस प्रकार का रवैया अद्भुत समझा जाना चाहिए, क्योंकि ऐसे ज़्यादातर महिला संगठनों ने प्रेम और सेक्स के कम्युनिस्ट आदर्शों की आड़ में विक्टोरियायी शुद्धतावादी मूल्यों को जम कर आत्मसात कर रखा है.
4. इस जगह मैं पूर्णिमा मनकेकर (2004) से सहमत हूँ कि भारतीय या पूर्वी दुनिया की यौनिकता को समझने के लिए किसी विशुद्ध भारतीय या प्राच्य नज़रिये का इस्तेमाल करना व्यर्थ होगा। पूँजीवाद के नये चरण और आधुनिक विकास ने हमारी यौनिकता के ताज़े रूपों का सामान्यीकरण कर दिया है, और इस सामान्यीकरण पर पश्चिमी संस्कृति की गहरी छाप है.
5. जॉन एच. गैगन और रिचर्ड जी. पार्कर ने अपने लेख 'कंसीविंग सेक्शुऑलिटी' में सर्वेक्षण तकनीक और सर्वेक्षणों के नतीजों के मीडिया द्वारा प्रसारण के महत्व पर रोशनी डाली है। दिल्ली का मौजूदा नज़ारा इस मायने में सत्तर के दशक में अमेरिकी मीडिया के नज़ारे से काफ़ी मिलता-जुलता है.
6. संजय श्रीवास्तव (2003) ने पुरुष यौनिकता पर अपनी एक रचना में इस पहलू की तरफ़ ध्यान खींचा है. बीसवीं सदी के शुरुआती दशकों में एन.एस. फड़के और ए.पी. पिल्ले जैसे यौनविज्ञानियों ने भारत की यौन समस्याओं पर नस्ल सुधारने की दृष्टि से अनुसंधान किया था जिसे यूजेनिक्स कहा जाता है.
7. 1990 के बाद से किये गये प्रमुख सेक्स सर्वे और अध्ययन इस प्रकार हैं जिनका इस विश्लेषण में इस्तेमाल किया गया है:

   लैस देन गे, एड्स भेदभाव विरोधी आंदोलन, नई दिल्ली 1991; मीरा सवारा और सी.आर. श्रीधर, *द डेबॉनेयर सेक्स सर्वे: सेक्स ऐण्ड दि इंडियन मेन* (अक्टूबर 1991, जनवरी 1992), स्वयं श्रीधर द्वारा निजी वितरण के लिए प्रकाशित दिसम्बर 1994 में मुंबई

में पुस्तक के रूप में प्रकाशित; मीरा सवारा और सी.आर. श्रीधर, *द सैवी सेक्स सर्वे : द सेक्स लाइफ़ ऑफ़ इंडियन विमेन, द सैवी*, अप्रैल 1992; *कामसूत्र क्रॉस-अैब सेक्स सर्वे 2003*, *डेल्ही टाइम्स* के 19, 22 और 29 मई 2003 के अंकों में इसके नतीजे प्रकाशित हुए, सर्वे का पूरा पाठ *डेल्ही टाइम्स/इंडियाटाइम्स.कॉम* पर उपलब्ध; 'यूथ सेक्शुऑलिटी : ए स्टडी ऑफ़ नॉलेज, एटीट्यूड्स, बिलीफ़्स ऐण्ड प्रेक्टिसेज़ एंड अरबन एजुकेटेड इंडियन यूथ 1993-94', फ़ेमिली प्लैनिंग एसोसियेशन ऑफ़ सेक्स-एक्स एट जी. बी. रोड इन डेल्ही, सेंटर फ़ॉर एजुकेशन ऐण्ड डोक्युमेंटेशन, मुंबई; 'सेक्सवर्कर्स, होमोसेक्शुअल्स राइज़िंग इन सिटी', डेल्ही स्टेट एड्स कंट्रोल सोसाइटी द्वारा कराई गई रिसर्च पर आधारित प्रमोद कुमार की रपट, *द डेल्ही एज*, 7 अगस्त 2003 डेल्ही वरजिन टेरिटरी टिल 18, गुड़गाँव के सेंटर फ़ॉर स्टडीज़ इन सेक्शुअल हेल्थ, के सर्वेक्षण पर आधारित जयदीप मजूमदार की रपट, *हिंदुस्तान टाइम्स*, 29 जुलाई 2003; 'सेक्स इन स्कूल नो मोर टैबू' : सर्वे, दिल्ली के अतिरिक्त पुलिस आयुक्त यू.एन.बी. राव द्वारा आईआईटी, दिल्ली के सहयोग से किये गये अध्ययन पर आधारित, श्रीरूपा मित्र चौधरी की रपट, *टाइम्स ऑफ़ इंडिया*, दिल्ली, 11 मार्च 1999; 'सेक्स इज़ इन बट अवेयरनैस इज़ नॉट', नेशनल इंस्टीटयूट ऑफ़ हैल्थ ऐण्ड फ़ेमिली वेलफ़ेयर द्वारा किये गये अध्ययन पर आधारित राधिका डी. श्रीवास्तव की रपट, *टाइम्स ऑफ़ इंडिया*, दिल्ली, 23 फरवरी, 2001; अनुपम रायज़ादा, एस.बी.गुप्ता, अरुण कुमार, सेक्शुअल प्रेक्टिसेज़ अदर देन पेनो-वैजाइनल सेक्स : पर्सेप्शंस ऐण्ड प्रेक्टिसेज़ इन एन अरबन कम्युनिटी, *इंडियन जरनल ऑफ़ कम्युनिटी मेडिसन*, खंड 27, अंक 4, अक्टूबर-दिसंबर 2002, एम.ई. ख़ान, जान डब्ल्यू. टाउनसेंड, रंजना सिन्हा और सीमा लखनपाल, सेक्शुअल वायलेंस विदिन मैरिज, 1997, पॉप्युलेशन काउंसिल, नयी दिल्ली; बिमान मुखर्जी, 'सोशल टैबू ऑफ़ प्रि-मैरिटल सेक्स ब्रोकन', 24 जून 2002, 2002 के कामसूत्र सेक्स सर्वे पर आधारित रपट आईअफ़्रीका.कॉम.

8. 'पोर्नोग्राफ़ीज़ मिरर हैज़ प्राइवेट इमेजेज़', *टाइम्स ऑफ़ इंडिया*, दिल्ली, 25 फरवरी 1995.
9. दि अदर विक्टिम्स ऑफ़ लस्ट : ए नाइटमेयर शो फ़ॉर फ़ीमेल रेजिडेंट्स, अमन सिंह की रपट, नेट पर उपलब्ध.
10. रिचा सिंह, मेस्क्युलिन आइडेंटिटीज़, वर्कर्स ऐण्ड एचआईवी/एड्स : अ स्टडी ऑफ़ डेल्हीज़ वज़ीरपुर इंडस्ट्रियल एरिया, ईपीडब्ल्यू/वीएसएनपएल.कॉम पर उपलब्ध.
11. जेरेमी सीब्रुक, लव इन ए डिफ़रेंट क्लाइमेट (दिल्ली के समलैंगिकों का एक अध्ययन), वर्सो, लंदन और न्यूयार्क, 1999.
12. हिजड़ों की यौनिकता किस तरह संगठन शक्ति के दम पर हिंसा और धमकी की भाषा बोल सकती है, इसके एक सबूत के रूप में रघुवीर नगर के हिजड़े नीलम बाई के विज़िटिंग कार्ड को देखा जा सकता है जिस पर साँई बाबा की तस्वीर छपी है, पूरे क्षेत्र का भौगोलिक वर्णन है और साफ़ लिखा है कि अगर नीलम बाई गोपालजी के अलावा किसी को बधाई दी, तो बधाई दोबारा ली जायेगी.
13. 'दि वर्ल्ड्स ओल्डेस्ट प्रोफ़ेशन – 2003' (दिल्ली के फ्रेंडशिप क्लबों पर एक रपट), आर्चिस मोहन और और विभा शर्मा, *हिंदुस्तान टाइम्स*, 16 फरवरी 2001.

संदर्भ

जॉन डि'इमिलियो, *कैपिटलिज़्म ऐण्ड गे आइडेंटिटी, दि लेस्बियन ऐण्ड गे स्टडीज़ रीडर* (सम्पादक : हेनरी एबेलव, मिशेल आइना बराली और डेविड एम. हैलपेरिन), रटलेज, न्यूयॉर्क और लंदन, 1993, पृष्ठ 467-476.

डेविड एम. हैलपेरिन, इज़ देयर ए हिस्ट्री ऑफ़ सेक्शुऑलिटी, *द लेस्बियन ऐण्ड गे स्टडीज़ रीडर*, पृष्ठ 416-431.

मिशेल फूको, *द हिस्ट्री ऑफ़ सेक्शुऑलिटी* (तीन खंड), पेंगुइन बुक्स, 1998.

लिंडा विलियम्स, *हार्ड कोर : पावर, प्लेज़र ऐण्ड द 'फ्रेंजी ऑफ़ द विज़िबल'*, कैम्ब्रिज, 1999.

रुथ वनिता और सलीम किदवई (सं.), *सेम सेक्स लव इन इंडिया : रीडिंग्स फ्रॉम लिटरेचर ऐण्ड हिस्ट्री*, मैकमिलन, 2000.

एंथनी गिडेंस, *द ट्रांसफ़ॉर्मेशन ऑफ़ इंटीमेसी : सेक्शुऑलिटी, लव ऐण्ड इरोटिसिज़्म इन मॉडर्न सोसाइटीज़*, पॉलिटी प्रेस, कैम्ब्रिज 1992.

सुधीर कक्कड़, *इंटीमेट रिलेशंस : एक्सप्लोरिंग इंडियन सेक्शुऑलिटी* ऑक्सफ़ोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली.

संजय श्रीवास्तव, 'सेन सेक्स, द फ़ाइव इयर प्लान हीरो, ऐण्ड मस्तराम मैस्क्युलिनिटी : ऑन द कल्चर्स ऑफ़ ट्वंटियथ सेंचुरी मैस्क्युलिनिटी', मैस्क्युनिलिटीज़ पर हुए सेमिनार में पेश आलेख.

पूर्णिमा मनकेकर और लुइसा शीन, 'इंट्रोडक्शन : मीडियेटेड ट्रांसनेशनलिज़्म ऐण्ड सोशल इरोटिक्स', *जर्नल ऑफ़ एशियन स्टडीज़*, 63, अंक 2, मई 2004.

एशियन रीजनल एक्सचेंज फ़ॉर न्यू ऑल्टर्नेटिव्ज़ (एरीना) के *जेंडर ऐण्ड सेक्शुऑलिटी* विशेषांक में प्रकाशित तीन लेख : उर्वशी बुटालिया की रचना 'दि इश्यू एट स्टेक : दि इंपॉर्टेन्स ऑफ़ द पॉलिटिक्स ऑफ़ सेक्शुऑलिटी', विकाश एन.पांडे की रचना 'कंज़्यूमिंग/कंज़्यूम्ड बॉडी : कंटेम्परेरी पॉलिटिक्स ऑफ़ डिज़ायर' और आभा चौहान की रचना 'प्रोस्टीट्यूशन ऐण्ड द सेक्स वर्क : डिलेमा फ़ार दि विमेंस मूवमेंट इन इंडिया'.

सुल्तान शाहीन, 'इंडिया रीडस्कवर्स कामा', *एशिया टाइम्स*, डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू.ए टाइम्स.कॉम.

माइनॉरिटीज़ ऐण्ड अदरनेस : सेक्शुऑलिटी इन द सिटी, लिमिटेड स्पेस, डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू.हेलसिंकी फ़ी/मे.कॉम.

डेविड टी. ईवांस, *सेक्शुऑल सिटिज़नशिप : द मैटीरियल कंस्ट्रक्शन ऑफ़ सेक्शुऑलिटीज़*, रटलेज, लंदन और न्यूयॉर्क, 1993.

लेस्बियन इमर्जेंस : *ख़ामोश इमरजेंसी जारी है! कैंपेन फ़ॉर लेस्बियन राइट्स, ए सिटिज़ंस रिपोर्ट*, अगस्त 1999, नई दिल्ली.